निवेदन

महात्मा गान्धी के ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी अमूल्य लेखों का इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। यह पुस्तक अब से कई मास पहले प्रेस में दे दी गई थी; पर जिस प्रेस में पुस्तक छप रही थी, उसमें कुछ राजनैतिक कारण से, पुलीस ने ताला बन्द कर दिया। इस कारण हमारी हस्त-लिखित कापी, और छपने का कागज, कई मास प्रेस में ही बन्द पड़ा रहा।

इस बीच में दारागंज के ही एक प्रकाशक महाशय ने—हमारे उक्त विघ्न से लाभ उठाकर—इसी तरह का एक लेख-संग्रह जल्दी-जल्दी से निकाल दिया! अब हमारी यह पुस्तक कई मास के बाद बड़ी कठिनाइयों से निकल रही है। हमने पुस्तक का मूल्य बहुत ही कम रखा है—इसलिए कि महात्मा गान्धी के इन विचारों का अधिक से अधिक संख्या में प्रचार हो।

इस पुस्तक के संकलन का कार्य पं० गोपीनाथजी दीक्षित बी० ए० ने किया है।

—प्रकाशक

विषय-सूची

ब्रह्मचर्य पर महात्मा गान्धी के अनुभव

"The generative energy which, when we are loose, dissipates and makes us unclean, when we are continent invigorates and inspires us. Chastity is the flowering of man; and what are called Genius, Heroism, Holiness, and the like, are but various fruits which succeed it."—महात्मा थोरो ।

१—ब्रह्मचर्य क्या है ?

इस विषय पर लिखना सरल नहीं है। पर अपने निजी अनुभव के बहुत विस्तृत होने के कारण मैं सदा अपने पाठकों को इसका फल बताने के लिये उत्सुक रहता हूँ। कुछ पत्र मुझे मिले हैं और उन्होंने इस इच्छा को और भी बल दे दिया है।

एक सज्जन पूछते हैं:—

"ब्रह्मचर्य क्या है ? क्या पूर्ण रूप से इसका पालन होना सम्भव है ? यदि है तो क्या आप उस स्थिति पर पहुँच गये हैं ?"

ब्रह्मचर्य का ठीक और पूरा अर्थ है ब्रह्म की खोज। ब्रह्म हम सब में व्याप्त है। इस लिये ध्यान, धारणा और तज्जनित साक्षात्कार की सहायता से हमें उसे अपने अन्तरतम में खोजना चाहिये। सारी इन्द्रियों के पूर्ण संयम के बिना साक्षात्कार असम्भव है। इस लिये ब्रह्मचर्य का अभिप्राय है मन, वचन, और कर्म से हर समय, और हर स्थान में, सम्पूर्ण इन्द्रियों का संयम।

पूर्ण ब्रह्मचारी पुरुष हों या स्त्री, पूर्णतया निष्पाप होते हैं। इस लिये वे परमात्मा के निकट होते हैं। वे परमात्मा के समान होते हैं। ब्रह्मचर्य का ऐसा पूर्ण पालन सम्भव है। इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। मुझे यह कहते खेद होता है कि इस प्रकार की पूर्णता मैं प्राप्त

नहीं कर पाया हूँ। किन्तु मैं उसे प्राप्त करने के लिये अनवरत उद्योग कर रहा हूँ और इस जीवन में ही इसे प्राप्त कर पाने की आशा अभी मैंने नहीं छोड़ी है।

जागने की दशा में मैं अपनी चौकसी पर रहता हूँ। मैंने शरीर पर शासन प्राप्त कर लिया है। वाणी में भी मेरा काफ़ी संयम है। किन्तु विचारों के सम्बन्ध में अभी मुझे बहुत कुछ करना बाक़ी है। जब मैं अपने विचारों को एक खास विषय पर जमाना चाहता हूँ तब दूसरे विचार भी मुझे छेड़ते रहते हैं। और उनमें आपस में टक्कर होती है। फिर भी मैं जागने के घंटों में उनकी टक्कर को रोक लेता हूँ। यह कहा जा सकता है कि मैं उस दशा को पहुँच गया हूँ जहाँ मैं अपवित्र विचारों से मुक्त हूँ। किन्तु मैं सोते समय अपने विचारों पर उतना ही संयम नहीं रख पाता हूँ। सोते में हर प्रकार के विचार मेरे मन में घुस आते हैं। और मैं ऐसे भी सपने देखता हूँ जिनकी आशा नहीं होती। कभी कभी पहले के भोगे हुए आनन्दों की इच्छा उमँग आती है। जब ये इच्छाएं अपवित्र रहती हैं तब सपने भी बुरे होते हैं। यह पापमय जीवन की निशानी है।

मेरे पाप के विचार घायल हो गये हैं। लेकिन मरे नहीं हैं। यदि मैंने अपने विचारों पर पूरा क़ाबू पा लिया होता तो पिछले दस साल में जो मुझे प्ल्यूरिसी, डिसेन्ट्री, और अपेण्डीसाइटीज़ की बीमारियाँ हुई हैं वे न हुई होतीं। मेरी धारणा है कि जब आत्मा निष्पाप होती है तब वह शरीर भी, जिसमें वह निवास करती है, स्वस्थ रहता है। तात्पर्य यह है कि जैसे ही आत्मा पाप से मुक्त होने की ओर अग्रसर होती है, वैसे ही शरीर भी रोगों से छुटकारा पाता जाता है। किन्तु

यहां स्वस्थ शरीर का अर्थ बलवान् शरीर नहीं है। शक्तिशाली आत्मा केवल दुर्बल शरीर में ही रहती है। जैसे ही जैसे आत्मा की शक्ति बढ़ती जाती है, शरीर दुर्बल होता जाता है। शरीर पूर्णतया स्वस्थ होते हुए भी बिल्कुल दुबला हो सकता है। बलवान् शरीर प्रायः रोगग्रस्त रहता है। अगर रोगग्रस्त न भी हो तब भी ऐसे शरीर को बीमारी दौड़ कर लगती है। दूसरी ओर पूर्ण स्वस्थ शरीर इस छूत से पूर्णतया सुरक्षित रहता है। शुद्ध रक्त में बीमारी के कीड़ों को निकाल बाहर करने की शक्ति होती है।

इस आश्चर्यजनक स्थिति को पहुँच जाना अवश्य कठिन है। नहीं तो मैं अब तक इसे पा गया होता। क्योंकि मुझे विश्वास है कि इस लक्ष्य तक पहुँचानेवाले एक भी साधन को अपनाने में मैं उदासीन नहीं रहता हूँ। ऐसी कोई भी बाहरी बात नहीं है जो मुझे मेरे लक्ष्य से दूर रख सके। किन्तु हम में यह शक्ति नहीं दी गई है कि हम पहले के कर्मों के निशानों को आसानी से मिटा दे सकें। मैं पाप से पूर्ण मुक्ति की स्थिति को सोच सकता हूँ। मैं इसकी धुँधली झलक भी देख सकता हूँ। इसी लिये इस देरी के होते हुए भी मैं तनिक भी निराश नहीं हुआ हूँ। जो उन्नति मैंने की है वह आशा ही बँधाती है। निराशा नहीं। यदि मैं अपनी अभिलाषा का साक्षात्कार किये बिना मर भी जाऊँ, तब भी मैं अपनी हार न मानूंगा। क्योंकि मैं अपने पुनर्जन्म में इतना ही विश्वास करता हूँ जितना इस जन्म में। और इसी लिये मैं जानता हूँ कि थोड़े से थोड़ा प्रयत्न भी बेकार नहीं जाता।

इन आत्मचरित के ब्योरों को मैंने इस लिये दिया है जिससे पत्र-लेखकों और उनकी सी दशा में स्थित दूसरे लोगों को साहस बँधे

और आत्म-विश्वास बढ़े। हम में से प्रत्येक में आत्मा एक ही है। सारी आत्माओं में बराबर सामर्थ्य रहती है। केवल अन्तर यह है कि कुछ ने तो अपनी शक्तियों का विकास कर लिया है और कुछ उन्हें सुप्त दशा में डाले हुए हैं। दूसरी कोटि की आत्माएं भी यदि कोशिश करें तो वैसा ही अनुभव प्राप्त कर सकती हैं।

यहाँ तक मैंने विस्तृत अर्थ में ब्रह्मचर्य पर लिखा है। सार्वजनिक और चालू बोली में ब्रह्मचर्य का अर्थ है मन, वचन, और कर्म से पाशवी कामलिप्सा का संयम। यह अर्थ भी सही है। क्योंकि पाशवी कामलिप्सा का संयम बहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रिय के संयम पर उतना ही ज़ोर नहीं दिया गया है और इसी लिये कामलिप्सा का संयम अधिक कठिन और असम्भव सा बन गया है। डाक्टर लोगों की धारणा है कि रोग के घुन से जर्जरित शरीर को कामलिप्सा ज़्यादा सताती है; और इसी लिये हमारे दुर्बलकाय मनुष्यों को ब्रह्मचर्य कठिन प्रतीत होता है।

दुर्बल किन्तु स्वस्थ शरीर के बारे में मैं ऊपर कह चुका हूँ। पर इससे हमें यह भाव न बना लेना चाहिये कि हम शारीरिक सुधार को भुला दे सकते हैं। मैंने अपनी टूटी-फूटी भाषा में ब्रह्मचर्य के सर्वोत्कृष्ट क्रम का वर्णन किया है और उसका ग़लत अर्थ लगाया जा सकता है। सारी इन्द्रियों का पूर्ण संयम प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले को अन्त में शारीरिक दुर्बलता का स्वागत करने के लिये तैयार रहना चाहिये। जब शरीर का मोह नहीं रहता, तब शारीरिक शक्ति की इच्छा भी नष्ट हो जाती है। किन्तु उस ब्रह्मचारी का शरीर, जिसने पाशवी काम-लिप्सा को जीत लिया है, बहुत ही बलवान् और कान्तिमान होना

चाहिये। यह परिमित ब्रह्मचर्य भी आश्चर्यजनक वस्तु है। जो मनुष्य स्वप्न में भी विषयी विचारों से मुक्त रहता है वह संसार द्वारा पूजनीय है। यह स्पष्ट है कि दूसरी इन्द्रियों का संयम करना उसके लिये बहुत आसान बात है।

दूसरे मित्र लिखते हैं:—

"मेरी दशा दयनीय है। दिन और रात, चाहे मैं आफ़िस में हूँ, सड़क पर हूँ, पढ़ रहा हूँ, काम कर रहा हूँ, या प्रार्थना भी कर रहा हूँ, वही पापपूर्ण विचार मुझे घेरे रहते हैं। मैं अपने विचारों का संयम किस प्रकार करूं? जैसे मैं अपनी माँ को देखता हूँ उसी दृष्टि से सारी स्त्री जाति को मैं कैसे देख सकता हूँ? मैं दुष्ट विचारों को किस प्रकार मिटा सकता हूँ? आपका ब्रह्मचर्य पर लिखा हुआ लेख मेरे सामने धरा है, लेकिन मुझे देख पड़ता है कि इससे मुझे तनिक भी लाभ नहीं हो सकता।"

यह अवश्य हृदय को दहलानेवाली दशा है। हममें से बहुतेरे इसी प्रकार की स्थिति में हैं। किन्तु जब तक मन दुष्ट विचारों का विरोध करने में जागरूक है तब तक निराश होने का कोई कारण नहीं है। यदि आँखें पाप की ओर अग्रसर हों तो उन्हें बन्द कर लेना चाहिये और यदि कान पाप में प्रवृत्त हों तो उनमें रुई की डाट लगा देनी चाहिये। आँखें नीची करके चलना अच्छी आदत है। इससे उन्हें इधर उधर घूमने का मौका नहीं मिलता। जिस जगह गन्दी बातचीत हो रही हो या गन्दे गाने गाये जा रहे हों, वहाँ से भाग जाना चाहिये।

स्वादेन्द्रिय पर संयम प्राप्त करना चाहिये। मेरा अनुभव है कि जिसने स्वादेन्द्रिय पर अधिकार नहीं पाया, वह कामलिप्सा का भी

संयम नहीं कर सकता। ज़बान पर क़ाबू पा लेना सरल काम नहीं है। किन्तु कामलिप्सा का संयम स्वादेन्द्रिय के संयम के साथ नत्थी है। स्वाद का संयम करने का एक साधन तो यह है कि मिर्च-मसाले का व्यवहार पूरी तरह, या जहाँ तक हो सके वहाँ तक, छोड़ दिया जाय। सदा इस भावना को जाग्रत करना, कि हम स्वाद के लिये नहीं, किन्तु शरीररक्षा के लिये भोजन करते हैं, दूसरा और विशेष प्रभावशाली साधन है। हम जीवन के लिये सांस लेते हैं, स्वाद के लिये नहीं। ठीक जिस प्रकार अपनी प्यास बुझाने के लिये हम पानी पीते हैं उसी प्रकार हमें केवल भूख को सन्तुष्ट करने के लिये ही खाना खाना चाहिये। अभाग्यवश पिता-माता बचपन से ही हमें विपरीत आदत डाल देते हैं। वे हमारे भरण-पोषण के लिये नहीं, वरन भ्रमपूर्ण स्नेह के कारण प्रत्येक प्रकार की ज़ायकेदार चीज़ें खिलाकर हमारी आदतें बिगाड़ देते हैं। हमें घरों के इस विपरीत वायुमंडल से भिड़ना पड़ेगा।

किन्तु पाशवी कामलिप्सा के संयम में हमारा सब से अधिक शक्तिशाली सहायक रामनाम, या इसी प्रकार के कोई अन्य मंत्र, से भी वही काम चल सकता है। जो मंत्र भावे वही भजा जावे। मैंने रामनाम का संकेत किया है; क्योंकि बचपन से ही मैं इससे परिचित रहा हूँ और मेरी मुठभेड़ों में यह निरन्तर सहायक रहता है। जो भी मंत्र चुना जावे, उसमें पूर्णतया तन्मय हो जाना चाहिये। यदि दूसरे विचार जप के बीच में भंग करें तो इसकी चिन्ता न करनी चाहिये। मुझे विश्वास है कि जो फिर भी श्रद्धा के साथ जप करता चला जावेगा वह अन्त में अवश्य जीतेगा। मंत्र जीवन की लकड़ी बन जाता है और जपनेवाले को प्रत्येक परीक्षा में से निकाल ले जाता है। इस प्रकार के पवित्र मंत्रों

से सांसारिक लाभ पाने की चेष्टा न करनी चाहिये। इन मंत्रों की विशेष शक्ति व्यक्तिगत पवित्रता की चौकस रखवाली है और प्रत्येक प्रयत्नशील खोजी तुरन्त ही इसे अनुभव कर लेगा। यह ध्यान रहे कि मंत्र को तोते की तरह न रटना चाहिये। अपनी आत्मा उसके अन्दर प्रवेश करा देनी चाहिए। तोता ऐसे मंत्रों को मशीन की नाईं रटता है। हमें चाहिये कि अवांछनीय विचारों को निकाल बाहर करने की आशा में, और मंत्रों की सहायक शक्ति में, पूर्ण श्रद्धा रखकर उनका जाप करें।

२—ब्रह्मचर्य्य के साधन

ब्रह्मचर्य और उसकी प्राप्ति के साधनों के विषय में मेरे पास पत्र पर पत्र आ रहे हैं। जो कुछ मैं पिछले अवसरों पर कह या लिख चुका हूँ वही दूसरी भाषा में मैं यहां दुहराना चाहता हूँ। ब्रह्मचर्य केवल मशीनवत कुँआरापन ही नहीं है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है सारी इन्द्रियों का पूर्ण संयम और मन, वचन, और कर्म से कामलिप्सा से मुक्ति। तभी तो यह आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मप्राप्ति का राजसी मार्ग है।

आदर्श ब्रह्मचारी को भोग-विलास अथवा सन्तानोत्पत्ति की इच्छाओं से भिड़ना नहीं पड़ता। ये तो कभी उसे सताती ही नहीं। उसके लिये तो सारी वसुधा ही कुटुम्ब होती है। उसकी सारी आकांक्षाएं मनुष्य-जाति को क्लेश से छुटकारा दिलाने में ही केन्द्रीभूत रहती हैं। उसको सन्तानोत्पत्ति की इच्छा बाधा नहीं कर सकती है। जिसने मनुष्य-जाति के विशाल क्लेश का अनुभव कर लिया है उसे कामलिप्सा कभी उत्तेजित कर ही नहीं सकती। उसे स्वाभाविक रूप से ही अपनी शक्ति के निकास-कुंड का ज्ञान हो जावेगा और वह सदा उसे अदूषित रखेगा। उसकी नम्र शक्ति के सामने सारा संसार नत-मस्तक होगा और उसका प्रभाव मुकुट-धारी राजा से भी कहीं अधिक रहेगा।

किन्तु मुझ से कहा जाता है कि यह तो असम्भव आदर्श है। आप पुरुष और स्त्री के बीच के प्राकृतिक आकर्षण को तो गिनते ही नहीं हैं। मुझे यह मानने से इन्कार है कि कामुक सम्बन्ध, जिसका यहां

निक किया गया है, कभी भी प्राकृतिक माना जा सकता है। यदि ऐसा हो तो शीघ्र ही प्रलय हो जाय। स्त्री और पुरुष के बीच का प्राकृतिक सम्बन्ध भाई और बहिन, माता और पुत्र, और पिता और लड़की का आकर्षण है। यही प्राकृतिक आकर्षण संसार को धारण करता है। यदि मैं सारी स्त्री जाति को बहिन, लड़की, या मां की दृष्टि से न देखूं तो मेरे लिये काम करना तो दूर रहा, जीना भी असम्भव हो जाय। यदि मैं कामुक दृष्टि से उनको निहारूं तो प्रलय का पक्का रास्ता बन जाय।

यह ठीक है कि सन्तानोत्पत्ति प्राकृतिक घटना है; किन्तु तब, जब कि वह निश्चित सीमाओं के भीतर हो। उन सीमाओं का उल्लंघन स्त्री-जाति को ख़तरे में डाल देता है, वंश को दुर्बल बनाता है, रोगों को उभाड़ता है, पाप को प्रोत्साहन देता है, और संसार को राक्षसी बनाता है। कामुक वासनाओं के चंगुल में पड़ा हुआ पुरुष बिना रोक-थाम का मनुष्य है। यदि ऐसा मनुष्य समाज का पथ-प्रदर्शक बने, उसे अपने लेखों से प्लावित कर दे और जनता उन्हीं के इशारे पर चले, तो समाज का क्या होगा? फिर भी आज दिन यही बात तो हो रही है। मान लिया कि एक लालटेन के आसपास चक्कर लगाने-वाला पतिंगा अपने क्षणिक आनन्द की घड़ियों को टांक लेता है और हम इसे आदर्श मानकर उसकी नकल करते हैं, तो हमारी क्या दशा होगी? नहीं, मैं अपनी सारी शक्ति के साथ इस बात की घोषणा करना चाहता हूँ कि पति और पत्नी के बीच में भी कामुक आकर्षण अप्राकृतिक है। विवाह दम्पति के हृदयों से गन्दी कामलिप्सा को शुद्ध करने और उन्हें परमात्मा के निकट पहुँचाने के लिये होता है। पति

और पत्नी के बीच कामुकता-रहित प्रेम का होना असम्भव नहीं है। मनुष्य जानवर नहीं है। पाशवी सृष्टि में अनगिनतिन जन्म लेने के बाद वह उच्च स्थिति को पहुँचा है। वह खड़े होने के लिये जन्मा है, चारों हाथ-पैरों पर चलने या रेंगने के लिये नहीं। इन्सानियत से हैवानियत इतनी ही दूर है जितना चैतन्य से जड़।

अन्त में मैं इसकी प्राप्ति के साधनों का सार देना चाहता हूँ—

इसकी आवश्यकता महसूस कर लेना प्रथम चरण है।

इन्द्रियों का क्रमशः संयम दूसरा चरण है। ब्रह्मचारी को अपनी स्वादेन्द्रिय पर काबू कर लेने की अत्यन्त आवश्यता है। उसे जीने के लिये खाना चाहिये, मज़े के लिये नहीं। उसे केवल पवित्र वस्तुएं ही देखनी चाहिएं और प्रत्येक अपवित्र वस्तु के सामने आंखें मूंद लेनी चाहिएं। इस लिये अपनी आंखें इस चीज़ से उस चीज़ पर न घुमाकर भूमि की ओर करके चलना सभ्य शिक्षा का चिन्ह है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी गन्दी अथवा दूषित बातें नहीं सुनेगा, और तीव्र तथा उत्तेजक पदार्थों को नहीं सूंघेगा। बनावटी सेंन्टों और एसेंसों की तरंगों से शुद्ध मिट्टी की सुगन्ध ज्यादा मीठी होती है। ब्रह्मचर्य के आकांक्षी को सारे जगने के घंटों में अपने हाथ-पैरों को भले कामों में लगाये रखना चाहिये। समय समय पर उसे उपवास भी रखने चाहिये।

पवित्र साथी, पवित्र मित्र, और पवित्र पुस्तकें रखना तीसरा चरण है।

प्रार्थना अन्तिम चरण है। किन्तु उपादेयता में यह किसी से कम नहीं है। प्रत्येक दिन ब्रह्मचारी को पूरे मन से रामनाम जपना चाहिए

और ईश्वरीय कृपा मांगनी चाहिए। औसत दर्जे के पुरुष या स्त्री के लिये इन बातों में से कोई भी कठिन नहीं है। वे साक्षात् सरलता की मूर्ति हैं। किन्तु उनकी सरलता ही तो असमंजस में डालती है। जब इच्छा रहती है, तब रास्ता काफ़ी सरल बन जाता है। मनुष्यों में इसके लिये इच्छा ही नहीं होती; और इसी लिये वे व्यर्थ में भटका करते हैं। ब्रह्मचर्य के, थोड़े या बहुत, पालन पर संसार अवलम्बित है- इस सत्य का अर्थ है कि ब्रह्मचर्य आवश्यक और सम्भव है।

३—ब्रह्मचर्य की आवश्यकता

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में प्रश्न पूछते हुए मेरे पास इतने पत्र आ रहे हैं और इस विषय में मेरे विचार इतने दृढ़ हैं कि खासकर राष्ट्रीय जीवन के इस घटनापूर्ण काल में अपने विचार और अपने तजुरबों के नतीजे पाठकों से मैं और अधिक नहीं छिपा सकता।

संस्कृत में अमैथुन का अभिवाची शब्द ब्रह्मचर्य है। परन्तु ब्रह्मचर्य का अर्थ अमैथुन से कहीं अधिक विस्तृत है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है सम्पूर्ण इन्द्रियों और अवयवों का संयम। पूर्ण ब्रह्मचारी के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। किन्तु यह आदर्श-स्थिति है जिसे विरले ही पाते हैं। यह रेखागणित की उस रेखा के सदृश है जो केवल कल्पना में ही रहती है और जो शारीरिक रूप से खींची ही नहीं जा सकती। फिर भी यह रेखागणित की एक मुख्य परिभाषा है और इसके बड़े परिणाम निकलते हैं। इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्मचारी भी केवल काल्पनिक जगत में ही रह सकता है। किन्तु यदि हम अपने ज्ञानचक्षु के सामने उसे निरन्तर न बनाये रक्खें तो हम बिना! पतवार की नौका के समान भटकें। इस काल्पनिक स्थिति के जितने ही निकट हम पहुँचते जावेंगे उतने ही पूर्ण होते जावेंगे।

किन्तु फिलहाल मैं अमैथुन के अर्थ में ही ब्रह्मचर्य पर लिखूंगा। मैं मानता हूँ कि आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने के लिये मन, वचन, कर्म से पूर्ण संयमी जीवन आवश्यक है; और जिस राष्ट्र में ऐसे मनुष्य

नहीं होते, वह इसी कमी के कारण दरिद्र है। किन्तु राष्ट्रीय विकास की मौजूदा स्थिति में सामयिक आवश्यकता के तौर पर ब्रह्मचर्य की पैरवी करना मेरा उद्देश्य है।

रोग, अकाल, और दरिद्रता, यहां तक कि भूखों मरना भी, मामूली से अधिक हमारे बांट में पड़ा है। हम ऐसे सूक्ष्म ढंग से दासता की चक्की में पीसे जा रहे हैं कि हम में से बहुतेरे इसको ऐसा मानने से भी इन्कार करते हैं और आर्थिक, मानसिक और नैतिक के तिहरे अभिशाप के होते हुए भी हम अपनी इस दशा को प्रगति-शील स्वतंत्रता का रूप मान बैठे हैं। शासन के भार ने कई प्रकार से भारत की ग़रीबी गहरी कर दी है और बीमारियों का सामना करने की योग्यता घटा दी है। गोखले के शब्दों में शासन के क्रम ने राष्ट्रीय उन्नति को भी यहां तक ठिठुरा दिया है कि हम में से बड़े से बड़े को भी झुकना पड़ता है।

ऐसे पतित वायुमंडल में, क्या यह हमारे लिये ठीक होगा कि हम परिस्थिति को जानते हुए भी बच्चे पैदा करें? जब कि हम अपने को असहाय, रोगग्रस्त और अकाल-पीड़ित पाते हैं, उस समय यदि प्रजोत्पत्ति के क्रम को हम जारी रखेंगे तो केवल गुलामों और चीणकायों की संख्या ही बढ़ेगी। हमें तब तक बच्चा पैदा करने का अधिकार नहीं है जब तक भारत स्वतंत्र राष्ट्र होकर भुखमरी का सामना करने के योग्य, अकाल के समय खिला सकने में समर्थ, और मलेरिया, हैजा, प्लेग तथा दूसरी बड़ी बीमारियों से निपटने की योग्यता से परिपूर्ण न हो जावे। मैं पाठकों से यह बात नहीं छिपाना चाहता कि जब मैं इस देश में जन्म-संख्या की वृद्धि सुनता हूँ तो मुझे दुःख होता है। मैं यह

प्रकट करना चाहता हूँ कि सालों से मैंने स्वकीय आत्मत्याग के द्वारा प्रजोत्पत्ति रोकने की सम्भावना पर संतोष के साथ विचार किया है। अपनी मौजूदा जन-संख्या की परवरिश करने के लायक भी भारत के पास साधन नहीं। इस लिये नहीं कि उसकी जनसंख्या अधिक है, किन्तु इस लिये कि वह एक ऐसे शासन के चंगुल में है जिस का सिद्धांत उसको उत्तरोत्तर दुहना है।

प्रजोत्पत्ति को रोक-थाम कैसे हो? यूरोप में काम में लाये जानेवाले पापपूर्ण और कृत्रिम निग्रहों से नहीं, किन्तु नियम और आत्मसंयम के जीवन से। पिता-माता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को ब्रह्मचर्य का पालन सिखावें। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार बालकों के विवाह की सब से कम अवस्था २५ साल है। यदि, भारतीय माताओं को यह विश्वास दिलाया जा सके कि लड़के और लड़कियों को विवाहित जीवन के लिये शिक्षा देना पाप है तो भारत में होनेवाली आधी शादियां अपने आप ही रुक जावें। हमारी गर्म जल-वायु के कारण लड़कियों के जल्दी रजस्वला होने की बात भी हमें न माननी चाहिए। जल्दी रजस्वला होने के वहम से भोंडा और कोई झूठा विश्वास मैंने कभी नहीं जाना। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि जलवायु का रजस्वला होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। समय के पहले रजस्वला बनने का कारण है हमारे कुटुम्ब का मानसिक और नैतिक वायुमंडल। माताएं और दूसरे कुटुम्बी अबोध बच्चों को यह सिखाना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते हैं कि जब उनकी इतनी उम्र हो जायगी तब उनका विवाह होगा। जब वे दुधमुहें बच्चे रहते हैं या पालने में झूलते हैं, तभी उनकी मँगनी हो जाती है। बच्चों के कपड़े और भोजन भी कामोत्ते

जना में सहायता देते हैं। उनके नहीं, किन्तु अपने आनन्द और गर्व के लिये हम अपने बच्चों को गुड्डों के से कपड़े पहनाते हैं। मैंने बीसियों बच्चों का पालन-पोषण किया है। और जो भी कपड़े उन्हें दिये, बिना कठिनाई के वे उन्हीं को पहनने लगे और खुश हुए। हम उन्हें हर प्रकार का गरम और उत्तेजक खाना खिलाते हैं। हमारा अंधा स्नेह उनकी क्षमता का ख्याल ही नहीं करता। निस्सन्देह फल यह होता है कि जल्दी जवानी आ जाती है, अधकचरे बच्चे पैदा होते हैं और जल्दी ही मर जाते हैं। पिता-माता अपने कामों से ऐसा जीता-जागता सबक देते हैं जिसे बच्चे आसानी से समझ लेते हैं। विषयभोग में बुरी तरह चूर रहकर वे अपने बच्चों के लिये बेरोक दुराचार के नमूने का काम देते हैं। कुटुम्ब की प्रत्येक कुसमय वृद्धि का बाजे-गाजे, खुशियों और दावतों के साथ स्वागत किया जाता है। आश्चर्य तो यह है कि ऐसे वायुमंडल के होते हुए हम इससे भी कम संयमी क्यों नहीं हैं। मुझे इसमें सन्देह की झलक भी नहीं है कि यदि विवाहित पुरुष अपने देश का भला चाहते हैं और भारत को बलवान्, रूपवान् और सुडौल स्त्री-पुरुषों का राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो वे पूर्ण आत्मसंयम का पालन करें और फिलहाल बच्चे पैदा करना बन्द कर दें। जिनका नया विवाह हुआ है उन्हें भी मैं यही सलाह दूंगा। किसी बात को न करना, उसको करके छोड़ने से आसान है। आजन्म शराब से निर्लिप्त बना रहना एक शराबी के शराब छोड़ने की अपेक्षा कहीं आसान है। खड़ा रहना, गिरकर उठने की अपेक्षा कहीं अधिक आसान है। यह कहना मिथ्या है कि संयम उन्हीं को भली तरह समझाया जा सकता है जो विषयभोग से अघा गये हैं। निर्बल मनुष्य को भी संयम सिखाने

का कोई अर्थ नहीं होता। मेरा पहलू तो यह है कि चाहे हम बुड्ढे हों या जवान, अघा गये हों या न अघा गये हों, मौजूदा घड़ी में यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी दासता के उत्तराधिकारी पैदा करना बन्द कर दें। मैं माता-पिताओं का ध्यान इस ओर भी दिला दूँ कि उन्हें एक दूसरे के अधिकार के विवाद-जाल में न फँसना चाहिए। विषयभोग के लिये सम्मति की आवश्यकता होती है, संयम के लिये नहीं। यह प्रत्यक्ष सत्य है।

जब हम एक शक्तिशाली सरकार से लड़ रहे हैं, तब हमें शारीरिक, आर्थिक, नैतिक और आत्मिक सभी शक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी। जब तक हम इस महान् कार्य को अपना सर्वस्व न बना लें और प्रत्येक अन्य वस्तु से इसको मूल्यवान् न समझ लें तब तक इस शक्ति को हम नहीं पा सकते। जीवन की इस व्यक्तिगत पवित्रता के बिना, हम गुलामों की जाति ही बने रहेंगे। हमें यह कल्पना करके अपने को धोखे में न डालना चाहिये कि चूंकि हम शासन-पद्धति को दूषित मानते हैं इस लिये व्यक्तिगत गुणों की होड़ में भी हमें अंग्रेजों से घृणा करनी चाहिये। मौलिक गुणों का आध्यात्मिक प्रदर्शन किये बिना वे लोग बहुत बड़ी संख्या में उनका शारीरिक पालन करते हैं। देश के राजनैतिक जीवन में बड़े हुए लोग, वहां, हम से कहीं अधिक संख्या में कुमारियां और कुमार हैं। हमारे बीच में कुमारियां तो होती ही नहीं। हां, बाइयां अवश्य होती हैं जिनका देश के राजनैतिक जीवन से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता। दूसरी ओर यूरोप में साधारण गुण के रूप में हजारों स्त्रियां अविवाहित रहती हैं।

अब मैं पाठकों के सामने कुछ सरल नियम रखता हूँ जो केवल

मेरे ही नहीं, किन्तु मेरे बहुतेरे साथियों के भी अनुभव पर आधारित हैं।

१—इस अटल विश्वास के साथ, कि वे निर्दोष हैं और रह सकते हैं, लड़के और लड़कियों का पालन-पोषण सरल और प्राकृतिक ढंग पर होना चाहिए।

२—उत्तेजक भोजन, मिर्च और दूसरे मसाले, टिकिया, और मिठाइयाँ जैसे चर्बीदार और गरिष्ट-भोजन और सुखाये हुए पदार्थ परित्याग कर देना चाहिये।

३—पति और पत्नी अलग-अलग कमरों में रहें और एकान्त में न मिलें।

४—शरीर और मन दोनों ही निरन्तर स्वास्थ्यप्रद कामों में लगे रहें।

५—शीघ्र सोने और शीघ्र जागने का नियम पालन किया जाय।

६—गन्दे साहित्य से दूर रहा जाय गन्दे विचारों की दवा पवित्र विचार हैं।

७—नाटक, सिनेमा आदि कामोत्तेजक तमाशों का बहिष्कार कर दिया जाय।

८—स्वप्नदोष के कारण कोई चिन्ता न करनी चाहिए। काफ़ी मज़बूत आदमी के लिये प्रत्येक बार ठंडे जल में स्नान करना, ऐसी दशा में, सब से अच्छी रोक है। यह कहना मिथ्या है कि अनिच्छित स्वप्नदोषों से बचने के लिये जब तब विषयभोग कर लेना संरक्षण है।

९—पति और पत्नी के बीच में भी संयम को इतना कठिन न मान लेना चाहिए कि वह लगभग असम्भव सा प्रतीत होने लगे।

दूसरी ओर, आत्मसंयम को जीवन की साधारण और स्वाभाविक आदत माननी चाहिये।

१०—प्रत्येक दिन पवित्रता के लिये दिल से की गई प्रार्थना उत्तरोत्तर पवित्र बनाती है।

ब्रह्मचर्य और आत्मसंयम

भादरण मुकाम पर एक अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए लोगों के अनुरोध से गान्धी जी ने ब्रह्मचर्य पर लम्बा प्रवचन किया। उसका सार यहाँ दिया जाता है—

आप चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य के विषय पर कुछ कहूँ। कितने ही विषय ऐसे हैं कि जिन पर मैं नवजीवन में कभी कभी लिखता हूँ। परन्तु उन पर व्याख्यान तो शायद ही देता हूँ; क्योंकि यह विषय ही ऐसा है कि कहकर नहीं समझाया जा सकता। आप तो मामूली ब्रह्मचर्य के बारे में सुनना चाहते हैं। 'समस्त इन्द्रियों का संयम' यह विस्तृत व्याख्या जिस ब्रह्मचर्य की है उसके विषय में नहीं। इस साधारण ब्रह्मचर्य को भी शास्त्रकारों ने बड़ा कठिन बताया है। यह बात ९९ फ़ीसदी सच है, एक फ़ीसदी इसमें कमी है। इसका पालन इस लिये कठिन मालूम होता है कि हम दूसरी इन्द्रियों को संयम में नहीं रखते। उसमें मुख्य है रसनेन्द्रिय। जो अपनी जिह्वा को क़ब्ज़े में रख सकता है उसके लिये ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। प्राणिशास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है कि पशु जिस दरजे तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है उस दरजे तक मनुष्य नहीं करता। यह सच है। इसका कारण देखने पर मालूम होगा कि पशु अपनी जिह्वा पर पूरा पूरा निग्रह रखते हैं—इच्छा-पूर्वक नहीं, स्वभावतः ही। केवल चारे पर अपनी गुज़र करते हैं—सो भी महज़ पेट भरने लायक ही खाते हैं। वे ज़िन्दगी के लिये खाते

हैं, खाने के लिये जीते नहीं हैं। पर हम तो इसके बिलकुल विपरीत करते हैं। मां बच्चे को तरह तरह के सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि बालक के साथ प्रेम दिखाने का यही सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करते हुए हम उन चीज़ों में स्वाद डालते नहीं, ले लेते हैं। स्वाद तो रहता है भूख में। भूख के वक्त सूखी रोटी भा मीठी लगती है और बिना भूखे आदमी को लड्डू भी फीके और बेस्वाद मालुम होंगे। पर हम तो अनेक चीज़ों को खा-खाकर पेट को ठसाठस भरते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो पाता।

जो आंखें हमें ईश्वर ने देखने के लिये दी हैं उनको हम मलिन करते हैं और देखने की वस्तुओं को देखना नहीं सीखते। 'माता को क्यों गायत्री न पढ़ना चाहिये और बालकों का वह गायत्री क्यों न सिखावे'—इसकी छानबीन करने की अपेक्षा उसके तत्व—सूर्योपासना—को सम-कर सूर्योपासना करावें तो क्या ही अच्छा हो। सूर्य को उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनों कर सकते हैं। यह तो मैंने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया। इस उपासना के मानी क्या हैं? अपना सिर ऊँचा रखकर, सूर्यनारायण के दर्शन करके, आँख की शुद्धि करना। गायत्री के रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होंने कहा कि सूर्योदय में जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है, वह और कहीं नहीं दिखाई दे सकती। ईश्वर के जैसा सुन्दर सूत्रधार और कहीं नहीं मिल सकता, और आकाश से बढ़कर भव्य रंगभूमि कहीं नहीं मिल सकती। पर कौन माता आज बालक को आँखें धोकर उसे आकाशदर्शन कराती है? बल्कि माता के भावों में तो अनेक प्रपंच रहते हैं। बड़े बड़े घरों में जो शिक्षा मिलती है उसके फल-स्वरूप तो लड़का शायद बड़ा

अधिकारी होगा; पर इस बात का कौन विचार करता है कि घर में जाने बे-जाने जो शिक्षा बच्चों को मिलती है उससे कितनी बातें वह ग्रहण कर लेता है। मां-बाप हमारे शरीर को ढकते हैं, सजाते हैं; पर इससे कहीं शोभा बढ़ सकती है? कपड़े बदन को ढकने के लिये हैं, सर्दी-गर्मी से रक्षा करने के लिये हैं, सजाने के लिये नहीं। जाड़े से ठिठुरे हुए लड़के को जब हम अंगीठी के पास बैठा लेंगे, अथवा मुहल्ले में खेलने-कूदने भेज देंगे, अथवा खेत में काम पर छोड़ देंगे, तभी उसका शरीर वज्र की तरह होगा। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है उसका शरीर वज्र की तरह ज़रूर होना चाहिये। हम तो बच्चों के शरीर को नाश कर डालते हैं। हम उसे घर में बन्द रखकर गरमाना चाहते हैं। इससे तो उसकी चमड़ी में इस तरह की गर्मी आती है जिसे हम छाजन की उपमा दे सकते हैं। हमने शरीर को दुलराकर उसे बिगाड़ डाला है।

यह तो हुई कपड़े की बात। फिर घर में तरह तरह की बातें करके हम बच्चों के मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। उनकी शादी की बातें किया करते हैं, और इसी क़िस्म की चीज़ें और दृश्य भी उन्हें दिखाये जाते हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज़ जंगली ही क्यों न हो गये। मर्यादा तोड़ने के अनेक साधनों के होते हुए भी मर्यादा की रक्षा हो रही है। ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस तरह से की है कि पतन के अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। ऐसी उसकी लीला गहन है। यदि ब्रह्मचर्य के रास्ते से ये सब विघ्न हम दूर कर दें तो उसका पालन बहुत आसान हो जाय।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनियाँ के साथ शारीरिक मुक़ाबला करना चाहते हैं। उसके दो रास्ते हैं। एक आसुरी और दूसरा दैवी।

आसुरी मार्ग है—शरीर-बल प्राप्त करने के लिये हर क़िस्म के उपायों से काम लेना—हर तरह की चीज़ें खाना, शारीरिक मुक़ाबले करना, मांस खाना, इत्यादि। मेरे लड़कपन में मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता कि मांसाहार हमें अवश्य करना चाहिये, नहीं तो अंग्रेज़ों की तरह हट्टे-कट्टे हम न हो सकेंगे। जापान को भी जब दूसरे देश के साथ मुक़ाबला करने का समय आया तब वहां मांस-भक्षण को स्थान मिला। सो यदि आसुरी प्रकार से शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीज़ों का सेवन करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब मुझे अपने ऊपर दया आती है। इस अभिनन्दनपत्र में मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। सो मुझे कहना चाहिये कि जिन्होंने इस अभिनन्दनपत्र का मजमून तैयार किया है उन्हें पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य किस चीज़ का नाम है। और जिसके बाल-बच्चे हुए हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को न तो कभी बुख़ार आता है, न कभी सिर दर्द करता है, न कभी खांसी होती है, न कभी अपेंडिसाइटिस होता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि नारंगी का बीज आंत में रह जाने से भी अपेंडिसाइटिस होजाता है। परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और नीरोग होता है उसमें ये बीज टिक ही नहीं सकते। जब आंतें शिथिल पड़ जाती हैं तब वे ऐसी चीज़ों को अपने आप बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी भी आंतें शिथिल हो गयी होंगी। इसी से मैं ऐसी कोई चीज़ हज़म न कर सका हूँगा। बच्चे ऐसी अनेक चीज़ें खा जाते हैं। माता इसका कहां ध्यान रखती है? पर उनकी

धांतों में इतनी शक्ति स्वाभाविक तौर पर ही होती है। इसी लिये मैं चाहता हूँ कि मुझ पर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन का आरोपण करके कोई मिथ्यावादी न हों। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का तेज तो मुझ से अनेक गुना अधिक होना चाहिये। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हां, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ। मैंने तो आप के सामने अपने अनुभव के कुछ कण पेश किये हैं, जो ब्रह्मचर्य की सीमा बताते हैं।

ब्रह्मचारी रहने का अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्री को स्पर्श न करूं, अपनी बहन का स्पर्श न करूं। पर ब्रह्मचारी होने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न हो। जिस तरह कि कागज को स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसका सेवा करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए, ब्रह्मचर्य के कारण मुझे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य तीन कौड़ी का है। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर को स्पर्श करके कर सकते हैं उसी का अनुभव जब हम किसी भारी सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि बालक ऐसे ब्रह्मचर्य को प्राप्त करें, तो इसका अभ्यास-क्रम आप नहीं बना सकते—मुझ जैसा अधूरा ही क्यों न हो; पर ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम संन्यासाश्रम से भी बढ़ कर है। पर उसे हमने गिरा दिया है। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है, वानप्रस्थाश्रम भी बिगड़ा है और संन्यास का तो नाम भी नहीं रह गया है। ऐसी हमारी असहाय अवस्था हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है उसका अनुकरण करके तो

आप पांच सौ वर्षों तक भी पठानों का मुकाबला न कर सकेंगे। दैवी मार्ग का अनुकरण यदि आज हो तो आज ही पठानों का मुकाबला हो सकता है। क्योंकि दैवी साधन से आवश्यक मानसिक परिवर्तन एक क्षण में हो सकता है। पर शारीरिक परिवर्तन करते हुए युग बीत जाते हैं। इस दैवी मार्ग का अनुकरण तभी हमसे होगा जब हमारे पल्ले पूर्वजन्म का पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिये उचित-सामग्री पैदा करेंगे।

५—ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य

इस पुस्तक के पिछले अध्यायों को जिन पाठकों ने ध्यानपूर्वक पढ़ा है, उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे इस अध्याय को और भी विशेष सावधानी से पढ़ें और इसके विषय पर अच्छी तरह चिन्तन करें। अभी कई और अध्याय लिखने हैं और वे अपने अपने ढंग से सभी उपयोगी प्रमाणित होंगे; किन्तु इस अध्याय के समान महत्त्वपूर्ण उन में से एक भी नहीं है। इस पुस्तक में ऐसी कोई भी बात नहीं कही गयी है जो मेरे निजी अनुभव में न आयी हो या जिसे मैं सोलह आना सत्य न मानता होऊं।

स्वास्थ्य की बहुतेरी कुंजियां हैं और वे सभी बहुत आवश्यक हैं; किन्तु उन सब में से अधिक आवश्यक ब्रह्मचर्य है। साफ़ हवा, साफ़ पानी, और पुष्ट भोजन निश्चय रूप से स्वास्थ्य के लिये हितकारी हैं। किन्तु यदि हम जितना स्वास्थ्य बनावें उतना ही बिगाड़ दें तो हम स्वस्थ कैसे बन सकते हैं? यदि हम जितना रुपया कमावें उतना ही उड़ा दें तो हम दरिद्र बनने से कैसे बच सकते हैं? इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं हो सकता कि स्त्री या पुरुष कोई भी तब तक वीर्यवान् और बलवान् नहीं बन सकते जब तक कि वे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न करें।

ब्रह्मचर्य क्या है? ब्रह्मचर्य का अर्थ है कि पुरुष और स्त्री एक दूसरे को विषय की दृष्टि से न देखें, एक दूसरे को विषय के विचार से न छुएं, उनके मन में स्वप्न में भी विषय के विचार न उठें। जब वे एक दूसरे की ओर देखें तो उनकी दृष्टि में कामुकता का लेश-मात्र

भी न हो। परमात्मा ने जो गुप्त शक्ति हमें दी है उसे दृढ़ आत्म-संचय द्वारा संचित करना चाहिये; और फिर उसे केवल शारीरिक नहीं; वरन् मानसिक और आत्मिक ओज और पौरुष के रूप में आलोकित करना चाहिए।

आइये, अब ज़रा देखें कि हमारे चारों ओर क्या तमाशा हो रहा है। पुरुष और स्त्री, बूढ़े और जवान सभी कामलिप्सा के जाल में फँसे पड़े हैं। विषय-वासना से अंधे होकर वे सत्य और असत्य की भावना को ही खो बैठे हैं। इसके घातक प्रभाव से जकड़े हुए लड़के-लड़कियों को मैंने स्वयं पागल की तरह बरतते देखा है। इसी के प्रभाव में पड़ कर मैंने भी इसी प्रकार का व्यवहार किया है और उससे अन्यथा कुछ मैं कर ही नहीं सकता था। थोड़ी सी देर के मज़े के लिये हम बड़ी मिहनत से कमाई हुई जीवनशक्ति की निधि को पल भर में खो देते हैं। जब मद उतरता है, तब हम अपने को दयनीय दशा में पाते हैं। दूसरे दिन सवेरे हमारा शरीर भारी और सुस्त मालूम होता है और दिमाग़ काम करने से जवाब दे देता है। हम दूध का काढ़ा पीते हैं, भस्म और याकूतियां खाते हैं, वैद्यों के पास जाकर ताक़त की दवा मांगते हैं और सदा इस खोज में रहते हैं कि खोयी हुई भोग की शक्ति कैसे यथावत हो जावे। यों ही दिन और वर्ष बीतते हैं और जब बुढ़ापा आता है तब हम अपने शरीर और दिमाग़ दोनों को ही क्षीण पाते हैं।

किन्तु प्रकृति का नियम ठीक इसके विपरीत है। जैसे ही हमारी उम्र बढ़ती जाती है वैसे ही हमारी बुद्धि भी तीक्ष्ण होती जानी चाहिए। जितना ही ज़्यादा हम जियें उतना ही ज़्यादा हममें इस बात की योग्यता होनी चाहिए कि हम अपने भाइयों को अपने संचित

अनुभव का लाभ बतला सकें। सच्चे ब्रह्मचारियों की ऐसी ही स्थिति रहती है। वे मौत से डरना नहीं जानते। वे मृत्यु की घड़ी में भी परमात्मा को नहीं भूलते। वे व्यर्थ की इच्छाओं में नहीं फँसते। मरते समय उनके ओठों पर मंद मुसकान खेलती है। परमात्मा के दरबार में जब उनका खाता पेश होता है तब वे विचलित नहीं होते। वे ही सच्चे पुरुष और स्त्री हैं और उन्हीं के लिये यह कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने स्वास्थ्य की रक्षा की है।

इस दुनियाँ में अहंकार, क्रोध, भय और ईर्ष्या आदि विषयों का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य-भंग ही है; यह बात भी हम नहीं समझ पाते। यदि हमारा मन हमारे वश में नहीं है, यदि रोज़ हम एक या अधिक वार छोटे बच्चों से भी ज़्यादा नादानी का काम करते हैं, तो फिर ऐसा कौन सा पाप होगा जिसे हम जान या अनजान में न कर सकेंगे? हम घोर से घोर पापकर्म करते हुए भी आगा-पीछा कैसे सोच सकेंगे?

लेकिन आप पूछ सकते हैं,—'क्या कभी भी किसी ने ऐसा ब्रह्मचारी देखा है? यदि सारे मनुष्य ब्रह्मचारी बन जावेंगे तो क्या फिर मनुष्य जाति नष्ट न हो जावेगी और सारा संसार खंडबंड न हो जावेगा?' हम यहाँ पर उपरोक्त प्रश्नों के धार्मिक पहलू पर विचार न करेंगे। केवल सांसारिक दृष्टि से ही उनकी छानवीन करेंगे। मेरी समझ में इन दोनों प्रश्नों की जड़ हमारी कमज़ोरी और डरपोकपन है। हममें ब्रह्मचर्य पालन करने के लिये यथेष्ट इच्छाबल नहीं है। इसी लिये हम अपने कर्तव्य से बचने के लिये बहाने ढूँढ़ते हैं। सच्चे ब्रह्मचारियों की कमी नहीं है। किन्तु यदि वे यों ही मिल जाँय तो फिर उनका

मूल्य ही क्या रहे ? हीरे की तलाश में हज़ारों मज़दूरों को पृथ्वी के अन्दर खानों में घुसना पड़ता है, तब कहीं जाकर पर्वताकाय चट्टानों में से मुट्ठी भर हीरे मिलते हैं। तब फिर पत्थर के हीरे से कहीं अधिक अमूल्य ब्रह्मचारी हीरा को पाने के लिये कितना अधिक प्रयत्न करना आवश्यक होगा ? यदि ब्रह्मचर्य पालन करने से संसार नष्ट हो जावे तो इससे हमें क्या ? हम ईश्वर हैं जो इसके भविष्य की चिन्ता करें ? जिसने इसे बनाया है वही इसे सँभालेगा भी। हमें यह भी जानने का कष्ट न करना चाहिए कि दूसरे लोग ब्रह्मचर्य पालन करते हैं या नहीं। जब हम किसी धंधे या व्यवसाय में पड़ते हैं तब हम क्या यह सोचते हैं कि यदि सभी लोग यही करने लगें तो दुनियाँ का भविष्य क्या होगा ? सच्चे ब्रह्मचारी को इन प्रश्नों के उत्तर समय आने पर अपने आप ही मिल जावेंगे।

किन्तु जो मनुष्य दुनियादारी की फिक्रों में फँसे हुए हैं वे इन विचारों को काम में कैसे ला सकते हैं ? जो विवाहित हैं वे क्या करें ? बाल-बच्चेवालों को कैसे चलना चाहिए ? जो पुरुष काम-लिप्सा को वश में नहीं कर पाते वे क्या करें ? मैं बतला चुका हूँ कि ब्रह्मचर्य की सब से ऊंची दशा कौन सी है। हमें चाहिए कि इस आदर्श को सदैव अपने सामने रखें और अपनी शक्ति भर उस तक पहुँचने की चेष्टा करें। जब छोटे बच्चों को बाराखड़ी लिखना सिखाया जाता है तब उन्हें अक्षर का अच्छे से अच्छे नमूना दिखाया जाता है और वे यथाशक्ति उसकी हूबहू नक़ल करने की चेष्टा करते हैं। इसी प्रकार यदि हम लगकर ब्रह्मचर्य के आदर्श तक पहुँचने की चेष्टा करें तो सम्भव है कि अन्त में हम उसे पूर्णतया पाने में सफल हो सकें। यदि

हमारा विवाह हो गया है तो इससे क्या? प्रकृति का नियम है कि ब्रह्मचर्य तभी तोड़ा जावे जब पति और पत्नी दोनों ही सन्तानकी इच्छा करें। जो लोग इस नियम को ध्यान में रखते हुए चार या पांच साल में ब्रह्मचर्य को एक बार भंग करते हैं वे कामलिप्सा के गुलाम नहीं हो जाते और न उनकी जीवनी शक्ति के भण्डार में ही कोई विशेष टोटा आता है। किन्तु अफ़सोस, कितने विरले ही स्त्री और पुरुष ऐसे हैं जो केवल सन्तान के लिये ही विषय-भोग करते हैं। शेष हजारों मनुष्य तो ऐसे ही मिलेंगे जो कामेन्द्रिय को तृप्त करने के लिये ही विषय-भोग में प्रवृत्त होते हैं और फलस्वरूप उनकी इच्छा के विरुद्ध बच्चे पैदा हो जाते हैं। विषय-वासना के उन्माद में हम अपने कामों के परिणामों को भी नहीं सोचते। इस विषय में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष ही विशेष दोषी हैं। पुरुष अपनी कामुकता में इतना मदान्ध हो जाता है कि वह एकदम भूल बैठता है कि उसकी स्त्री कमज़ोर है और बच्चा जनने के योग्य नहीं है। पश्चिम के लोगों ने तो इस विषय में सारी सीमाएं ही पार कर दी हैं। वे भोग-विलास में मस्त रहते हैं और ऐसी तदबीरें निकालते हैं जिससे वे बच्चों की ज़िम्मेदारी से भी बच जावें। इस विषय पर बहुतेरी पुस्तकें लिखी गयी हैं और सन्तति-निग्रह के साधनों का अच्छा खासा धन्धा चल पड़ा है। हम अब तक इस पाप से बचे हुए हैं। किन्तु साथ ही हम अपनी स्त्रियों पर मातृत्व का बोझ डालने में नहीं सहमते और इस बात की भी चिन्ता नहीं करते कि हमारे बच्चे नपुंसक, कमज़ोर और मूर्ख होंगे। प्रत्येक बार जब बच्चा जन्मता है, हम परमात्मा को धन्यवाद देते हैं, पूजा रचा करते हैं, और इस प्रकार अपने कामों की क्रूरता को छिपाना चाहते हैं। कमज़ोर,

लूली, लँगड़ी, विषयी, और डरपोक सन्तान का होना हमें ईश्वरीय कोप का चिन्ह समझना चाहिए। छोटे छोटे बालक-बालिकाओं के सन्तान उत्पन्न होना क्या आनन्द मनाने की बात है? क्या यह दैवी कोप नहीं है? हम सभी जानते हैं कि अल्हड़ पेड़ में समय से पहले फल लग जाने से पेड़ कमज़ोर पड़ जाता है। इसी लिये फल आने में देरी करने की हम हर प्रकार से चेष्टा करते हैं। किन्तु जब बालक बाप और बालिका माँ से बच्चा पैदा होता है तब हम परमात्मा की प्रशंसा और बधाई के गीत गाते हैं। इससे ज़्यादा भयानक और क्या बात हो सकती है? क्या हम सोचते हैं कि यह नपुंसक बच्चों का अनगिनत झुंड जो भारतवर्ष तथा दूसरे देशों में दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है, संसार की रक्षा कर सकेगा? सत्य तो यह है कि इस विषय में हम पशुओं से भी गये-बीते हैं। पशुओं के नर और मादे का संयोग तभी कराया जाता है जब उनसे बच्चे उत्पन्न कराने होते हैं। गर्भाधान के समय से लेकर बच्चे के दूध पीना छोड़ देने के समय तक एक दूसरे से अलग रहना पुरुष और स्त्री को अपना परम कर्तव्य समझना चाहिए। किन्तु हम इस पवित्र कर्तव्य की उपेक्षा करके अपने घातक भोग-विलास में मदमस्त होकर विभोर रहते हैं। यह असाध्य रोग हमारे मन को दुर्बल बना देता है और चंद दिन के क्लेशमय जीवन में घसीटने के बाद थोड़ी अवस्था में ही काल का ग्रास बनाता है। विवाहित स्त्री-पुरुषों को विवाह का सच्चा उद्देश्य समझना चाहिए और सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के अतिरिक्त कभी भी ब्रह्मचर्य का भंग न करना चाहिए।

किन्तु हमारी आज-कल की जीवनचर्या में ऐसा हो सकना बहुत

कठिन है। हमारी खुराक, रहनसहन, बातचीत, और वायुमंडल सभी विषय-वासना को जाग्रत करनेवाले हैं। कामलिप्सा हमारी जीवन-शक्ति में विष की तरह प्रवेश कर गयी है। कुछ लोग यह शङ्का कर सकते हैं कि जब यह दशा है तब मनुष्य इस बंधन से कैसे मुक्त हो सकता है? यह पुस्तक ऐसे मनुष्यों के लिये नहीं लिखी गयी है जो ऐसी शंकाएं करते फिरें। यह तो उनके लिये है जो वास्तव में उत्साही हैं और जिनमें आत्मोन्नति के लिये जी तोड़कर प्रयत्न करने का साहस है। अपनी मौजूदा पतित दशा में ही संतोष मान बैठनेवालों को तो इसका पढ़ना भी बोझ मालूम होगा। किन्तु मुझे आशा है कि अपनी करुण दशा समझकर उससे उकताए हुए लोगों के लिये यह अवश्य लाभयुक्त होगी।

इन बातों से यह फल निकलता है कि जो लोग अभी अविवाहित हैं वे अविवाहित ही बने रहने का उद्योग करें; किन्तु यदि बिना विवाह काम न चल सके तो जहाँ तक सम्भव हो देर से विवाह करें। युवा पुरुष पच्चीस-तीस बरस तक विवाह न करने का प्रण कर सकते हैं। ऐसा करने से शारीरिक उन्नति के अतिरिक्त और जो लाभ होंगे उनका विचार हम यहां नहीं कर सकते। लोग चाहें तो स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

इस अध्याय को पढ़नेवाले माता-पिताओं से मेरी यह प्रार्थना है कि वे बचपन में विवाह करके अपने बच्चों के गलों में चक्की का पाट न बांधें। उनका कर्तव्य है कि वे उमगती हुई सन्तानों के हित-अनहित को देखें और केवल अपने अभिमान को चार चाँद लगाने में ही व्यस्त न रहें। रईसी और घराने की शान-शौकत के मूर्खतापूर्ण ख्यालों को

उन्हें धता बता देना चाहिए। यदि वे बच्चों के सच्चे हितचिन्तक हैं तो उन्हें उनकी शारीरिक, मानसिक, और नैतिक उन्नति की ओर ध्यान देना चाहिये। बचपन में ही बच्चों को ज़बर्दस्ती ब्याह कर गृहस्थी के जंजाल और ज़िम्मेदारी में डाल देने से बढ़ कर उनका अहित और क्या हो सकता है?

स्वास्थ्य के सच्चे नियमों के अनुसार पत्नी की मृत्यु के बाद पति को और पति की मृत्यु के बाद पत्नी को अकेला ही रहना चाहिए—दूसरा विवाह न करना चाहिए। क्या नौजवान स्त्री-पुरुषों को कभी भी वीर्यपात करने की आवश्यकता है? इस प्रश्न पर डाक्टरों में मतभेद है। कुछ इसका जवाब हाँ में और कुछ 'नहीं' में देते हैं। किन्तु जब डाक्टरों में मतभेद है तब यह सोचकर कि एक पक्ष के डाक्टरों की सम्मति हमारी ओर है, हमें विषय-भोग में तल्लीन न हो जाना चाहिए। मैं अपने निजी तथा दूसरों के अनुभव के बल पर निस्संकोच यह कह सकता हूँ कि विषयभोग आरोग्य-रक्षा के लिये केवल अनावश्यक ही नहीं वरन् हानिकर है। बहुत वर्षों की बँधी हुई मन और तन की मज़बूती एक बार के वीर्यपात से भी इतनी जाती रहती है कि उसे फिर से प्राप्त करने में काफ़ी समय लगता है और फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि असली स्थिति आ गयी है। टूटे शीशे को जोड़कर काम भले ही चल जाय, लेकिन वह रहेगा टूटा शीशा ही।

जैसा पहले कहा जा चुका है, साफ़ हवा, साफ़ पानी, हितकर और स्वच्छ भोजन, और शुद्ध विचारों के बिना वीर्य-रक्षा होना असम्भव है। आचरण और आरोग्य का इतना घना सम्बन्ध है कि पवित्र जीवन

के बिना पूर्ण आरोग्य प्राप्त किया ही नहीं जा सकता। जब जागे तभी से सवेरा समझकर और पुरानी भूलों को भुलाकर जो पवित्र जीवन का आचरण प्रारम्भ करेगा वह प्रत्यक्ष इसके लाभ अनुभव करेगा। जिन्होंने थोड़े समय तक भी ब्रह्मचर्य का पालन किया है उन्हें भी अपने मन और शरीर के बढ़े हुए बल का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ होगा और वे इस पारसमणि को, प्राण की भांति, यत्नपूर्वक रक्षा करते होंगे। ब्रह्मचर्य का मूल्य पूर्णतया समझ चुकने के बाद भी मैंने स्वयं ही भूलें की हैं और उनका बुरा फल भी भोगा है। जब मैं इन भूलों के पहले और बाद की अपनी दशा के महान् अन्तर पर विचार करता हूँ तो मेरा हृदय लज्जा और पश्चात्ताप से भर जाता है। किन्तु पिछली भूलों ने अब मुझे इस पारसमणि का संचय करना सिखा दिया है और मुझे पूरी आशा है कि परमात्मा की अनुकम्पा से भविष्य में भी इसे संचित रख सकूंगा। ब्रह्मचर्य के अपरिमित लाभों को मैंने स्वयं अपने शरीर में अनुभव किया है। मैं लड़कपन में ही व्याहा गया और थोड़ी अवस्था में बच्चों का बाप बना। आखिरकार जब मेरी आंखें खुलीं तब मुझे मालूम हुआ कि मैं जीवन के प्रारम्भिक नियमों से भी अनभिज्ञ था। यदि मेरी भूलों और अनुभवों से चेतकर एक मनुष्य भी बच सकेगा तो यह अध्याय लिखकर मैं अपने को कृतार्थ मानूंगा। बहुत से लोगों ने मुझसे कहा है और मैं भी मानता हूँ कि मुझमें शक्ति और उत्साह बहुत है और कोई मानसिक दुर्बलता नहीं है। कुछ तो यहां तक कहते हैं कि मुझ में इतनी शक्ति है कि वह हठ का रूप धारण कर लेती हैं। तब भी पुरानी यादगार में कुछ न कुछ तो शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता बाक़ी ही है। फिर भी अपने मित्रों की ओर देखते हुए मैं अपने को स्वस्थ और

मज़बूत कह सकता हूँ। जब मैं बीस साल तक विषय-भोग में व्यस्त रहकर भी इस दशा तक पहुँच सका हूँ, तब यदि मैंने अपने को उन बीस सालों में भी पवित्र रखा होता तो मेरी दशा कितनी विशेष अच्छी रही होती। यह मेरा पूर्ण विश्वास है कि यदि मैंने जीवन भर निरन्तर अभंग ब्रह्मचर्य का आचरण किया होता तो मेरी शक्ति और उत्साह सहस्रों गुना ज्यादा होता और मैं उस सब को अपने देश की सेवा में लगा सका होता। जब मेरा सा अधूरा ब्रह्मचारी इतना लाभ उठा सकता है तो फिर अभंग ब्रह्मचर्य पालन से कितनी विशेष विस्मय-जनक शारीरिक, मानसिक, और नैतिक शक्ति प्राप्त हो सकती होगी।

जब ब्रह्मचर्य का नियम इतना कठोर है तो फिर असंगत व्यभिचार में मस्त रहनेवाले अक्षम्य पापियों के लिये हम क्या कहें? छिनाला और रंडीबाज़ी से होनेवाली बुराइयाँ धर्म और नीति का विषय हैं। स्वास्थ्य की पुस्तक में उन पर पूर्ण रूप से विचार नहीं किया जा सकता। यहां केवल इतना ही कहा जा सकता है कि छिनाला अथवा रंडीबाज़ी से मनुष्य गरमी आदि नाम न लेनेवाली बीमारियों से पीड़ित होकर सड़ते देखे जाते हैं। परमात्मा बड़ा न्यायी है और पापियों को शीघ्र ही दंड देता है। उनकी थोड़ी सी जिन्दगी इन बीमारियों का इलाज कराते ही बीतती है। यदि छिनाला और रंडीबाज़ी मिट जावे तो आधे डाक्टर बे-धंधे के हो जावें। इन बीमारियों से मनुष्य जाति को बुरी तरह घिरे देखकर विचारशील डाक्टरों को कहना पड़ा है कि यदि पर-स्त्रीगमन और वेश्या-सहवास का सपाटा यों ही चलता रहा तो कोई भी दवा मनुष्य जाति की रक्षा न कर सकेगी। इन रोगों की दवाइयां इतनी ज़हरीली होती हैं कि यद्यपि वे कुछ समय के लिये लाभ करती

जान पड़ती हैं; किन्तु वे ऐसे दूसरे भयानक रोग उत्पन्न कर देती हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी चले जाते हैं।

विवाहित स्त्री-पुरुषों का ब्रह्मचर्य पालन करने के उपाय बतलाकर इस, आवश्यकता से बढ़े हुए, अध्याय को समाप्त करना चाहिए। हवा, पानी और भोजन-सम्बन्धी स्वास्थ्य के नियम पालन करना ही पर्याप्त नहीं है। पति को पत्नी के साथ एकान्तवास भी छोड़ देना चाहिए। विचार करने से जान पड़ेगा कि विषय-भोग के सिवा पति-पत्नी के एकान्तवास की आवश्यकता नहीं होती। रात्रि में उन्हें अलग अलग कमरों में सोना चाहिए और दिन भर लगातार अच्छे कामों में लगे रहना चाहिए। उन्हें ऐसी पुस्तकें पढ़नी चाहिएं जो उन्हें उच्च विचारों से भर दें। महापुरुषों के जीवन पर चिन्तन करना चाहिए और इस बात को सदा सामने रखना चाहिए कि विषय-भोग ही बहुतेरे कष्टों की जड़ है। जब उन्हें विषय-वासना सतावे तब ठंडे पानी में नहा डालना चाहिए जिससे उन्माद की गरमी ठंडी पड़ जावे और हितकर शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जावे। ऐसा करना कठिन है, किन्तु हम कठिनाइयों से भिड़ने और उन्हें जीतने के लिये ही तो पैदा हुए हैं। जो ऐसा करने की इच्छा नहीं करता वह सच्चे स्वास्थ्य के परमानन्द को प्राप्त नहीं कर सकता।

६—ब्रह्मचर्य और सत्य

एक मित्र महादेव देसाई को इस प्रकार लिखते हैं :

"आपको यह तो स्मरण होगा ही कि कुछ महीने पहले 'नवजीवन' में ब्रह्मचर्य पर लेख लिखे गये थे—शायद आप ही ने 'यंग इन्डिया' से उनका अनुवाद किया था। गांधीजी ने उस समय इस बात को प्रकट किया था कि मुझे अब भी दूषित स्वप्न आते हैं। यह पढ़ते ही मुझे ख्याल हुआ था कि ऐसी बातें प्रकट करने का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता और पीछे से मेरा यह ख्याल सच साबित होता हुआ प्रतीत हुआ है।

"विलायत की हमारी यात्रा में मैंने और मेरे दो मित्रों ने अनेक प्रकार के प्रलोभनों के होते हुए भी अपना चरित्र शुद्ध रक्खा था। उन तीन 'म' से तो बिलकुल ही दूर रहे थे। लेकिन गांधीजी का उपरोक्त लेख पढ़कर मेरे मित्र बिलकुल ही हताश हो गये और उन्होंने दृढ़तापूर्वक मुझसे कहा कि 'इतने भगीरथ प्रयत्न करने पर भी जब गांधीजी की यह हालत है तब फिर हमारा क्या हिसाब? यह ब्रह्मचर्यादि पालन करने का प्रयत्न करना वृथा है। मुझे तो अब गयाबीता ही समझो।' कुछ म्लान मुख से मैंने उसका बचाव करना आरम्भ किया, 'यदि गांधीजी जैसों को भी इस मार्ग पर चलना इतना कठिन मालूम होता है तो फिर हमें अब तिगुने अधिक प्रयत्नशील होना चाहिये। इत्यादि'—जैसी कि दलीलें आप या गांधीजी करेंगे। लेकिन यह सब व्यर्थ हुआ। आज तक जो निष्कलंक

और सुन्दर-चरित्र था वह कलंकित हो गया। कर्म-सिद्धान्तानुसार इस अधःपतन का कुछ दोष कोई गांधीजी पर लगावें तो आप या गांधीजी क्या कहेंगे ?

"जब तक मुझे इस एक ही उदाहरण का ख्याल था, मैंने आपको कुछ भी न लिखा था—'अपवाद' के नाम से आसानी से टाल दिये जानेवाले उत्तर से मैं सन्तोष मानने के लिये तैयार न था। लेकिन उपरोक्त लेख के पढ़ने के बाद ही घटित हुए दूसरे ऐसे उदाहरणों से मेरे भय को पुष्टि मिली है और ऊपर बताये गये उदाहरण में मेरे मित्र पर उस लेख का जो परिणाम हुआ, केवल अपवादरूप न था, इसका मुझे यकीन होगया है।

"मैं यह जानता हूँ कि गांधीजी को जो हज़ारहा बातें आसानी से शक्य हो सकती हैं वे मेरे लिये सर्वथा अशक्य हैं। लेकिन भगवान् की कृपा से इतना बल तो प्राप्त है कि जो गांधीजी को भी अशक्य मालूम हो, ऐसी एकाध बात मेरे लिए संभव भी हो जाय। गांधीजी की यह उक्ति पढ़कर मेरा अन्तर विलोड़ित हुआ है और ब्रह्मचर्य का स्वास्थ्य जो विचलित हुआ है सो अभी तक स्थिर नहीं हो सका है। फिर भी ऐसे ही एक विचार ने मुझे अधःपात से बचा लिया है। बहुत मरतबा तो एक दोष ही दूसरे दोष से मनुष्य की रक्षा करता है। इसमें भी मेरे अभिमान के दोष के कारण मेरा अधःपतन होता हुआ रुक गया। गांधीजी के ध्यान में यह बात लाने की कृपा करेंगे! ख़ासकर अभी जब कि वे आत्म-कथा लिख रहे हैं। सत्य और शुद्ध लिखने में बहादुरी तो अवश्य है, लेकिन संसार में और 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के पाठकों

६—ब्रह्मचर्य और सत्य

एक मित्र महादेव देसाई को इस प्रकार लिखते हैं :

"आपको यह तो स्मरण होगा ही कि कुछ महीने पहले 'नवजीवन' में ब्रह्मचर्य पर लेख लिखे गये थे—शायद आप ही ने 'यंग इन्डिया' से उनका अनुवाद किया था। गांधीजी ने उस समय इस बात को प्रकट किया था कि मुझे अब भी दूषित स्वप्न आते हैं। यह पढ़ते ही मुझे ख्याल हुआ था कि ऐसी बातें प्रकट करने का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता और पीछे से मेरा यह ख्याल सच साबित होता हुआ प्रतीत हुआ है।

"विलायत की हमारी यात्रा में मैंने और मेरे दो मित्रों ने अनेक प्रकार के प्रलोभनों के होते हुए भी अपना चरित्र शुद्ध रक्खा था। उन तीन 'म' से तो बिलकुल ही दूर रहे थे। लेकिन गांधीजी का उपरोक्त लेख पढ़कर मेरे मित्र बिलकुल ही हताश हो गये और उन्होंने दृढ़तापूर्वक मुझसे कहा कि 'इतने भगीरथ प्रयत्न करने पर भी जब गांधीजी की यह हालत है तब फिर हमारा क्या हिसाब? यह ब्रह्मचर्यादि पालन करने का प्रयत्न करना वृथा है। मुझे तो अब गयाबीता ही समझो।' कुछ म्लान मुख से मैंने उसका बचाव करना आरम्भ किया, 'यदि गांधीजी जैसों को भी इस मार्ग पर चलना इतना कठिन मालूम होता है तो फिर हमें अब तिगुने अधिक प्रयत्नशील होना चाहिये। इत्यादि'—जैसी कि दलीलें आप या गांधीजी करेंगे। लेकिन यह सब व्यर्थ हुआ। आज तक जो निष्कलंक

और सुन्दर-चरित्र था वह कलंकित हो गया। कर्म-सिद्धान्तानुसार इस अधःपतन का कुछ दोष कोई गांधोजी पर लगावें तो आप या गांधीजी क्या कहेंगे ?

"जब तक मुझे इस एक ही उदाहरण का ख्याल था, मैंने आपको कुछ भी न लिखा था—'अपवाद' के नाम से आसानी से टाल दिये जानेवाले उत्तर से मैं सन्तोष मानने के लिये तैयार न था। लेकिन उपरोक्त लेख के पढ़ने के बाद ही घटित हुए दूसरे ऐसे उदाहरणों से मेरे भय को पुष्टि मिली है और ऊपर बताये गये उदाहरण में मेरे मित्र पर उस लेख का जो परिणाम हुआ, केवल अपवादरूप न था, इसका मुझे यकीन होगया है।

"मैं यह जानता हूँ कि गांधीजी को जो हजारहा बातें आसानी से शक्य हो सकती हैं वे मेरे लिये सर्वथा अशक्य हैं। लेकिन भगवान् की कृपा से इतना बल तो प्राप्त है कि जो गांधोजी को भी अशक्य मालूम हो, ऐसी एकाध बात मेरे लिए संभव भी हो जाय। गांधीजी की यह उक्ति पढ़कर मेरा अन्तर विलोड़ित हुआ है और ब्रह्मचर्य का स्वास्थ्य जो विचलित हुआ है सो अभी तक स्थिर नहीं हो सका है। फिर भी ऐसे ही एक विचार ने मुझे अधःपात से बचा लिया है। बहुत मरतबा तो एक दोष ही दूसरे दोष से मनुष्य की रक्षा करता है। इसमें भी मेरे अभिमान के दोष के कारण मेरा अधःपतन होता हुआ रुक गया। गांधीजी के ध्यान में यह बात लाने की कृपा करेंगे! खासकर अभी जब कि वे आत्म-कथा लिख रहे हैं। सत्य और शुद्ध लिखने में बहादुरी तो अवश्य है, लेकिन संसार में और 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के पाठकों

में इससे विरुद्ध गुण का परिमाण ही अधिक है। इसलिये एक का माल दूसरे के लिये ज़हर हो सकता है।"

यह शिकायत कोई नई नहीं है। सत्याग्रह के आन्दोलन का जब बड़ा ज़ोर था और उस समय जब मैंने अपनी गलती को स्वीकार किया था तब एक मित्र ने बड़े ही सरलभाव से कहा था "आपको गलती मालूम हो तो भी उसको प्रकाश न करना चाहिए। लोगों को यह ख्याल बना रहना चाहिए कि ऐसा भी कोई पुरुष है कि जिससे कभी गलती नहीं हो सकती है। आप ऐसे ही गिने जाते थे। आपने गलती को स्वीकार किया है, इस लिए अब लोग हताश होंगे।" इस पत्र को पढ़कर मुझे हँसी आई और खेद भी हुआ। लेखक के भोलेपन पर मुझे हँसी आई। जिससे कभी गलती न हो, ऐसा मनुष्य यदि न मिले तो किसी को भी मनाने का विचार करना मुझे त्रासदायक प्रतीत हुआ।

मुझसे गलती हो और वह यदि मालूम हो जाय तो उससे लोगों को हानि के बदले लाभ ही होगा। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि गलतियों को मेरे शीघ्र स्वीकार करने से जनता को लाभ ही हुआ है। और मैंने अपने सम्बन्ध में तो यह अनुभव किया है कि मुझे तो उससे अवश्य लाभ हुआ है।

मेरे दूषित स्वप्नों के सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिये। सम्पूर्ण ब्रह्मचारी न होने पर भी यदि मैं वैसा करने का दावा करूं तो उससे संसार को बड़ी हानि होगी। उससे ब्रह्मचर्य कलंकित होगा। सत्य का सूर्य म्लान हो जावेगा। ब्रह्मचर्य का मिथ्या दावा करके मैं ब्रह्मचर्य का मूल्य क्यों घटा दूँ! आज तो मैं यह स्पष्ट देख सकता हूँ कि ब्रह्मचर्य के पालन के लिये मैं जो उपाय बताता हूँ वे सम्पूर्ण नहीं हैं। सब लोगों को

वे सम्पूर्णतया सफल नहीं होते हैं; क्योंकि मैं स्वयं सम्पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूँ। संसार यदि यह माने कि मैं सम्पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ; और मैं उसकी जड़ी-बूटी न दिखा सकूँ, तो यह कैसी बड़ी त्रुटि गिनी जायगी!

मैं सच्चा साधक हूँ। मैं सदा जाग्रत रहता हूँ। मेरा प्रयत्न दृढ़ है। इतना ही क्यों बस न माना जाय! इसी बात से दूसरों को मदद क्यों न मिले। मैं भी यदि विचार के विकारों से दूर नहीं रह सकता हूँ तो फिर दूसरों का कहना ही क्या! ऐसा ग़लत हिसाब करने के बदले यह सीधा ही क्यों न किया कि जो शख़्स एक समय व्यभिचारी और विकारी था वह आज यदि अपनी पत्नी के साथ भी अपनी लड़की या बहन का सा भाव रखकर रह सकता है तो हम लोग भी इतना क्यों न कर सकेंगे! हमारे स्वप्नदोषों को, विचार-विकारों को तो ईश्वर दूर करेगा ही। यह सीधा हिसाब है।

लेखक के वे मित्र, जो मेरे स्वप्नदोष के स्वीकार के बाद पीछे हटे हैं, कभी आगे बढ़े हो न थे। उन्हें झूठा नशा था। वह उतर गया। ब्रह्मचर्यादि महाव्रतों की सत्यता या सिद्धि मुझ जैसे किसी भी व्यक्ति पर अवलम्बन नहीं रखती है। उसके पीछे लाखों मनुष्यों ने तेजस्वी तपश्चर्या की है और कुछ लोगों ने तो सम्पूर्ण विजय भी प्राप्त की है।

उन चक्रवर्तियों की पंक्ति में खड़े रहने का जब मुझे अधिकार प्राप्त होगा तब मेरी भाषा में आज से भी अधिक निश्चय दिखाई देगा। जिसके विचार में विकार नहीं है, जिसकी निद्रा का भंग नहीं

में इससे विरुद्ध गुण का परिमाण ही अधिक है । इसलिये एक का खाद्य दूसरे के लिये ज़हर हो सकता है ।"

यह शिकायत कोई नई नहीं है । असहयोग के आन्दोलन का जब बड़ा ज़ोर था और उस समय जब मैंने अपनी गलती को स्वीकार किया था तब एक मित्र ने बड़े ही सरलभाव से कहा था "आपको गलती मालूम हो तो भी उसको प्रकाश न करना चाहिए । लोगों को यह ख्याल बना रहना चाहिए कि ऐसा भी कोई ए॰ है कि जिससे कभी गलती नहीं हो सकती है । आप ऐसे ही गिने जाते थे । आपने गलती को स्वीकार किया है, इस लिए अब लोग हताश होंगे ।" इस पत्र को पढ़कर मुझे हँसी आई और खेद भी हुआ । लेखक के भोलेपन पर मुझे हँसी आई । जिससे कभी गलती न हो, ऐसा मनुष्य यदि न मिले तो किसी को भी मनाने का विचार करना मुझे त्रासदायक प्रतीत हुआ ।

मुझसे गलती हो और वह यदि मालूम हो जाय तो उससे लोगों को हानि के बदले लाभ ही होगा । मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि गलतियों को मेरे शीघ्र स्वीकार करने से जनता को लाभ ही हुआ है । और मैंने अपने सम्बन्ध में तो यह अनुभव किया है कि मुझे तो उससे अवश्य लाभ हुआ है ।

मेरे दूषित स्वप्नों के सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिये । सम्पूर्ण ब्रह्मचारी न होने पर भी यदि मैं वैसा करने का दावा करूं तो उससे संसार को बड़ी हानि होगी । उससे ब्रह्मचर्य कलंकित होगा । सत्य का सूर्य म्लान हो जावेगा । ब्रह्मचर्य का मिथ्या दावा करके मैं ब्रह्मचर्य का मूल्य क्यों घटा दूँ ! आज तो मैं यह स्पष्ट देख सकता हूँ कि ब्रह्मचर्य के पालन के लिये मैं जो उपाय बताता हूँ वे सम्पूर्ण नहीं हैं । सब लोगों को

वे सम्पूर्णतया सफल नहीं होते हैं; क्योंकि मैं स्वयं सम्पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूँ। संसार यदि यह माने कि मैं सम्पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ; और मैं उसकी जड़ी-बूटी न दिखा सकूं, तो यह कैसी बड़ी त्रुटि गिनी जायगी!

मैं सच्चा साधक हूँ। मैं सदा जाग्रत रहता हूँ। मेरा प्रयत्न दृढ़ है। इतना ही क्यों बस न माना जाय! इसी बात से दूसरों को मदद क्यों न मिले। मैं भी यदि विचार के विकारों से दूर नहीं रह सकता हूँ तो फिर दूसरों का कहना ही क्या! ऐसा ग़लत हिसाब करने के बदले यह सीधा ही क्यों न किया कि जो शख़्स एक समय व्यभिचारी और विकारी था वह आज यदि अपनी पत्नी के साथ भी अपनी लड़की या बहन का सा भाव रखकर रह सकता है तो हम लोग भी इतना क्यों न कर सकेंगे! हमारे स्वप्नदोषों को, विचार-विकारों को तो ईश्वर दूर करेगा ही। यह सीधा हिसाब है।

लेखक के ये मित्र, जो मेरे स्वप्नदोष के स्वीकार के बाद पीछे हटे हैं, कभी आगे बढ़े ही न थे। उन्हें झूठा नशा था। वह उतर गया। ब्रह्मचर्यादि महाव्रतों की सत्यता या सिद्धि मुझ जैसे किसी भी व्यक्ति पर अवलम्बन नहीं रखती है। उसके पीछे लाखों मनुष्यों ने तेजस्वी तपश्चर्या की है और कुछ लोगों ने तो सम्पूर्ण विजय भी प्राप्त की है।

उन चक्रवर्तियों की पंक्ति में खड़े रहने का जब मुझे अधिकार प्राप्त होगा तब मेरी भाषा में आज से भी अधिक निश्चय दिखाई देगा। जिसके विचार में विकार नहीं है, जिसकी निद्रा का भंग नहीं

होता है, जो निद्रित होने पर भी जागृत रह सकता है, वह नीरोग होता है। उसे क्विनैन के सेवन की आवश्यकता नहीं होती। उसके निर्विकार रक्त में ही ऐसी शुद्धि होती है कि उसे मलेरिया इत्यादि के जन्तु कभी दुःख नहीं पहुँचा सकते। यह स्थिति प्राप्त करने के लिये मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। उसमें हारने की कोई बात ही नहीं है। उस प्रयत्न में लेखक को, उनके श्रद्धाहीन मित्रों को, और दूसरे पाठकों को, मेरा साथ देने के लिये मैं निमंत्रण देता हूँ और चाहता हूँ कि लेखक की तरह वे मुझ से भी अधिक तीव्र वेग से आगे बढ़ें। जो पीछे पड़े हुए हों वे मुझ जैसों के दृष्टांत से आत्म-विश्वासी बनें। मुझे जो कुछ भी सफलता प्राप्त हो सकी है उसे मैं निर्बल होने पर भी, विकारवश होने पर भी—प्रयत्न करने से, श्रद्धा से, और ईश्वरकृपा से प्राप्त कर सका हूँ।

इस लिये किसी को भी निराश होने का कोई कारण नहीं है। मेरा महात्मापन मिथ्या उच्चार है। वह तो मुझे मेरी बाह्य प्रवृत्ति के—मेरे राजनैतिक कार्य के—कारण प्राप्त है। वह क्षणिक है। मेरे सत्य का, अहिंसा का, और ब्रह्मचर्य का आग्रह ही मेरा अविभाज्य और सब से अधिक मूल्यवान् अंग है। उसमें मुझे जो कुछ ईश्वरदत्त प्राप्त हुआ है उसकी कोई भूल कर भी अवज्ञा न करें, उसमें मेरा सर्वस्व है। उसमें दिखाई देनेवाली निष्फलता सफलता की सीढ़ियाँ हैं। इस लिये निष्फलता भी मुझे प्रिय है।

७—ब्रह्मचर्य और जनन-मर्यादा

निहायत झिझक और अनिच्छा के साथ मैं इस विषय में कुछ लिखने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। जब से मैं भारतवर्ष को लौटा हूँ तभी से लोग कृत्रिम साधनों के द्वारा सन्तति की संख्या मर्यादित करने के प्रश्न पर मुझ से जिक्र कर रहे हैं। मैं खानगी तौर पर ही अब तक उनको जवाब देता रहा हूँ। आम तौर पर कभी मैंने उसकी चर्चा नहीं की। आज से कोई तीस साल पहले जब मैं इंग्लैंड में पढ़ता था तब इस विषय की ओर मेरा ध्यान गया था। उस समय वहाँ एक संयमवादी और एक डाक्टर के बीच बड़ा वाद-विवाद चल रहा था। संयमवादी कुदरती साधनों के सिवा किसी दूसरे साधनों के मानने के लिये तैयार न था और डाक्टर कृत्रिम साधनों का हामी था। उसी समय से मैं कुछ समय तक कृत्रिम साधनों की ओर प्रवृत्त होकर फिर उनका पक्का विरोधी हो गया। अब मैं देखता हूँ कि कुछ हिन्दी पत्रों में कृत्रिम साधनों का वर्णन बड़े क्रान्तिकारी ढंग से और खुले तौर पर किया गया है। जिसे देखकर सुरुचि को बड़ा आघात पहुँचता है। और मैं देखता हूँ कि एक लेखक ने तो मेरा भी नाम बेखटके जन्म-मर्यादा के लिये कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने के हामियों में लिख मारा है। मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं पड़ता जब कि मैंने कृत्रिम साधनों के उपयोग के पक्ष में कोई बात कही या लिखी हो। मैं देखता हूँ कि दो और प्रसिद्ध पुरुषों के नाम इस के समर्थकों में दिये गये हैं। बिना उनके मालिकों से पूछताछ किये मुझे उनका नाम प्रकट करने में संकोच होता है।

सन्तति के जन्म को मर्यादित करने की आवश्यकता के बारे में दो मत हो ही नहीं सकते। परन्तु इसका एक ही उपाय है, आत्मसंयम या ब्रह्मचर्य, जो कि युगों से हमें प्राप्त है। यह रामबाण और सर्वोपरि उपाय है और जो इसका सेवन करते हैं उन्हें लाभ ही लाभ होता है। डाक्टर लोगों का मानव जाति पर बड़ा उपकार होगा, यदि वे जन्ममर्यादा के लिये कृत्रिम साधनों की तजवीज करने की जगह आत्मसंयम के साधन निर्माण करें। स्त्री-पुरुष के मिलाप का हेतु आनन्द-भोग नहीं, बल्कि सन्तानोत्पत्ति है और जब कि सन्तानोत्पत्ति की इच्छा नहीं है तब संभोग करना बिल्कुल अपराध है, गुनाह है।

कृत्रिम साधनों की सलाह देना मानो बुराई का हौसला बढ़ाना है। उससे पुरुष और स्त्री उच्छृंखल हो जाते हैं। और इन कृत्रिम साधनों को जो सभ्य रूप दिया जा रहा है उससे तो संयम के ह्रास की गति बढ़े बिना न रहेगी। कृत्रिम साधनों के अवलम्बन का कुफल होगा नपुंसकता और क्षीण-वीर्यता। यह दवा मर्ज से ज्यादा बत्तर साबित हुए बिना न रहेगी। अपने कर्म के फल को भोगने से दुम दबाना दोष है, अनीतिपूर्ण है। जो शख्स ज़रूरत से ज़्यादा खा लेता है उसके लिये यह अच्छा है कि उसके पेट में दर्द हो और उसे लंघन करना पड़े। ज़बान को क़ाबू में न रखकर अनाप-शनाप खा लेना और फिर बलवर्द्धक या दूसरी दवाइयाँ खाकर उसके नतीजे से बचना बुरा है। पशु की तरह विषयभोग में गर्क रहकर फिर अपने इस कृत्य के फल से बचना और भी बुरा है। प्रकृति बड़ी कठोर शासक है। वह अपने क़ानून-भंग का पूरा बदला बिना आगापीछा देखे चुकाती है।

नैतिक संयम के द्वारा ही हमें नैतिक फल मिल सकता है। दूसरे तमाम प्रकार के संयम-साधन अपने हेतु के ही विनाशक सिद्ध होंगे। कृत्रिम साधनों के समर्थन के मूल में यह युक्ति या धारणा गर्भित रहती है कि भोग-विलास जीवन की एक आवश्यक चीज़ है। इससे बढ़ कर हेत्वाभास—ग़लत तर्क हो ही नहीं सकता।

अतएव जो लोग जन्म-मर्यादा के लिये उत्सुक हैं उन्हें चाहिए कि वे प्रचीन लोगों के बताये जायज़ उपायों का ही विचार करें, कि उन का जीर्णोद्धार किस तरह हो। उनके सामने बुनियादी काम का पहाड़ खड़ा हुआ है। बालविवाह लोकसंख्या की वृद्धि का एक बड़ा सफल कारण है। हमारी वर्तमान जीवनविधि भी बेरोक प्रजोत्पत्ति के दोष का बड़ा कारण है। यदि इन कारणों की छान-बीन करके उनको दूर करने का उपाय किया जाय तो नैतिक दृष्टि से समाज बहुत ऊंचा उठ जायगा। यदि हमारे इन जल्दबाज़ और अति उत्साही लोगों ने उनकी ओर ध्यान न दिया और यदि कृत्रिम साधनों का ही दौरदौरा चारों ओर हो गया तो सिवा नैतिक अधःपात के दूसरा कोई नतीजा न निकलेगा। जो समाज पहिले ही विविध कारणों से निःसत्व हो रहा है, इन कृत्रिमों साधनों के प्रयोग से और भी अधिक निःसत्व हो जायगा। इस लिये वे शख्स, जो कि हलके दिल से कृत्रिम साधनों का प्रचार करते हैं, वे नये सिरे से इस विषय का अध्ययन-मनन करें, अपनी हानिकर कार्रवाइयों से बाज़ आवें और क्या विवाहित और क्या अविवाहित दोनों में ब्रह्मचर्य की निष्ठा जाग्रत करें। जनन-मर्यादा का यही उच्च और सीधा तरीका है।

८—ब्रह्मचर्य और मनोवृत्तियाँ

एक अंग्रेज़ सज्जन लिखते हैं : 'यंग इंडिया'' में सन्तान-निग्रह पर आपने जो लेख लिखे हैं, उनको मैं बड़ी दिलचस्पी से पढ़ता रहा हूँ। मेरी उम्मीद है कि आपने जे० ऐ० हडफ़ील्ड की "साइकालोजी ऐंड मोरल्स" नामक पुस्तक पढ़ ली है। मैं आपका ध्यान उस पुस्तक के निम्न लिखित उद्धरण की ओर दिलाना चाहता हूँ :—

"विषयभोग स्वेच्छाचार उस हालत में कहलाता है जब कि यह प्रवृत्ति नीति की विरोधिनी मानी जाती हो और विषयभोग निर्दोष आनन्द तब माना जाता है जब कि इस प्रवृत्ति को प्रेम का चिन्ह माना जाय। विषय-वासना का इस प्रकार व्यक्त होना दाम्पत्य प्रेम को वस्तुतः गाढ़ा बनाता है, न कि उसे नष्ट करता है। लेकिन एक ओर तो मनमाना संभोग करने से और दूसरी ओर संभोग के विचार को तुच्छ सुख मानने के भ्रम में पड़कर उससे परहेज करने से अक्सर अशान्ति पैदा होती है और प्रेम कम पड़ जाता है।" यानी उनको समझ में संभोग करना सन्तानोत्पत्ति के कारणों के सिवा भी स्त्री से प्रेम बढ़ाने का धार्मिक गुण रखता है।

"अगर लेखक की बात सच है तो मुझे आश्चर्य है कि आप अपने इस सिद्धान्त का समर्थन किस प्रकार कर सकते हैं कि सन्तान पैदा करने की मंशा से किया हुआ संभोग ही उचित है—अन्यथा नहीं। मेरा तो

निजी ख्याल यह है कि लेखक की उपरोक्त बात सच है; क्योंकि महज यही नहीं कि वह एक मानसशास्त्रवेत्ता हैं, बल्कि मुझे खुद ऐसे मामले मालूम हैं कि जिसमें प्रेम को व्यवहार के द्वारा व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा को रोकने की कोशिश करने से दाम्पत्य जीवन नीरस या नष्ट होगया है।

"अच्छा इसे लीजिये—एक युवक और एक युवती एक दूसरे के साथ प्रेम करते हैं और उनका यह करना सुन्दर तथा ईश्वरकृत व्यवस्था का एक अंग है। परन्तु उनके पास अपने बच्चे को तालीम देने के लिए काफी पैसा नहीं है (और मैं समझता हूं कि आप इससे सहमत हैं कि तालीम वगैरह की हैसियत न रखते हुए संतान पैदा करना पाप है) या यह समझ लीजिये कि सन्तान पैदा करना स्त्री की तन्दुरुस्ती के लिये हानिकारक होगा या यह कि उसके अभी ही बहुत से बच्चे हैं।

"आपके कथनानुसार तो इस दम्पति के सामने दो ही रास्ते हैं—या तो वे विवाह करके अलग अलग रहें—लेकिन अगर ऐसा होगा तो हडफील्ड की उपरोक्त दलील के मुआफिक उनके बीच मुहब्बत का खात्मा हो चलेगा—या वे अविवाहित रहें, लेकिन इस सूरत में भी उनकी मुहब्बत जाती रहेगी। इसका कारण यह है कि प्रकृति बल के साथ मनुष्यकृत योजनाओं की अवहेलना किया करती है। हाँ, यह बेशक हो सकता है कि वे एक दूसरे से जुदा हो जावें, लेकिन इस अलाहदगी में भी उनके मन में विकार तो उठते ही रहेंगे। और अगर सामाजिक व्यवस्था ऐसी बदल दें कि सब लोगों के लिए उतने ही बच्चे पैदा करना मुमकिन हो जितने कि वे चाहें, तो भी समाज को अतिशय सन्तानोत्पत्ति का, हर एक औरत को हद से ज़्यादा सन्तान उत्पन्न करने का,

ख़तरा तो बना ही रहता है। इसकी वजह यह है कि मर्द अपने को बहुत ज़्यादा रोके रहते हुए भी साल में एक बच्चा तो पैदा कर ही लेगा। आपको या तो ब्रह्मचर्य का समर्थन करना चाहिये या सन्तान निग्रह का; क्योंकि वक्तन् फवक्तन किये हुए सम्भोग का नतीजा यह हो सकता है कि (जैसा कभी कभी पादरियों में हुआ करता है) औरत, ईश्वर की मरजी के नाम पर, मर्द के द्वारा पैदा किया हुआ हर साल एक बच्चा जनन करने की वजह से मर जाय। जिसे आप आत्मसंयम कहते हैं वह प्रकृति के काम में उतना ही विरोधी है—बल्कि हकीकतन ज़्यादा-जितना कि गर्भाधान को रोकने के कृत्रिम साधन हैं। सम्भव है कि पुरुष लोग इन साधनों की मदद से विषय-भोग में ज़्यादती करें; परन्तु उससे सन्तति की पैदाइश रुक जायगी और अन्त में उन्हीं को दुःख भोगना होगा—अन्य किसी को नहीं। इसके विपरीत, जो लोग इन साधनों का उपयोग नहीं करते, वे भी ज़्यादती के दोष से कदापि मुक्त नहीं हैं, और उनके दोष को वे ही नहीं, सन्तति भी—जिनकी पैदाइश को वे नहीं रोक सकते हैं, भोगते हैं। इंग्लैंड में आजकल खानों के मालिकों और मज़दूरों के बीच जो झगड़ा चल रहा है, उसमें खानों के मालिकों की विजय सम्भवित है। इसका कारण यह है कि खदान वाले बहुत बड़ी तादाद में हैं। सन्तानोत्पत्ति की निरंकुशता से बेचारे बच्चों का ही बिगाड़ नहीं होता; बल्कि समस्त मानव जाति का।

इस पत्र में मनोवृत्तियों तथा उनके प्रभाव का खासा परिचय मिलता है। जब मनुष्य का दिमाग रस्सी को सांप समझ लेता है, तब उस विचार को लिये हुए वह घबरा जाता है, या तो वह भागता है, या उस कल्पित सांप को मार डालने की गरज से लाठी उठाता है। दूसरा

आदमी किसी गैर स्त्री को अपनी पत्नी मान बैठता है और उसके मन में पशु-वृत्ति उत्पन्न होने लगती है। जिस क्षण वह अपनी यह भूल जान लेता है, उसी क्षण उसका वह विकार ठंडा पड़ जाता है।

इसी तरह से उपरोक्त मामले में, जिसका कि पत्रलेखक ने जिक्र किया है, माना जाय। "जैसा कि संभोग की इच्छा को तुच्छ मानने के भ्रम में पड़कर उससे परहेज करने से प्रायः अशान्तपन उत्पन्न होता है; और प्रेम में कमी आ जाती है" यह एक मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। लेकिन अगर संयम प्रेमबंधन को अधिक दृढ़ बनाने के लिए रक्खा जाय, प्रेम को शुद्ध बनाने के लिए तथा एक अधिक अच्छे काम के लिये वीर्य को जमा करने के अभिप्राय से किया जाय, तो वह अशान्तपन के स्थान पर शान्ति ही बढ़ावेगा और प्रेमगांठ को ढीला न करके उलटे उसे मज़बूत बनावेगा। यह दूसरी मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। जो प्रेम पशुवृत्ति की तृप्ति पर आधारित है, वह आखिर स्वार्थपन ही है और थोड़े से भी दबाव से वह ठंडा पड़ सकता है। फिर, यदि पशु-पक्षियों की संभोगतृप्ति को आध्यात्मिक स्वरूप न दिया जाय तो मनुष्यों में होने वाली संभोग-तृप्ति का आध्यात्मिक स्वरूप क्यों दिया जाय? हम जो चीज जैसी है वैसी ही उसे क्यों न देखें? प्रति जाति को कायम रखने के लिए यह एक ऐसी क्रिया है जिसकी ओर हम ज़बरदस्ती खींचे जाते हैं। हां, लेकिन मनुष्य अपवाद स्वरूप है, क्योंकि वही एक ऐसा प्राणी है जिसको ईश्वर ने मर्यादित स्वतंत्र इच्छा दी है और इसके बल से वह जाति की उन्नति के लिये, और पशुओं की अपेक्षा उच्चतर आदर्श की पूर्ति के लिये, जिसके लिये वह संसार में आया है, इन्द्रियभोग न करने की क्षमता रखता है। संस्कारवश ही हम यों मानते हैं कि सन्तानोत्पत्ति के

कारण के सिवाय भी स्त्रीप्रसंग आवश्यक और प्रेम की वृद्धि के लिये इष्ट है। बहुतों का अनुभव यह है कि भोग ही के कारण किया हुआ स्त्रीप्रसंग प्रेम को न तो बढ़ाता है और न उसको स्थिर करने के लिये या उसको शुद्ध करने के लिये आवश्यक है। अलबत्ता ऐसे भी उदाहरण बहुत दिये जा सकते हैं कि जिनमें निग्रह से प्रेम और भी दृढ़ होगया है। हाँ, इसमें कोई शक नहीं कि वह निग्रह पति और पत्नी के बीच आपस में आत्मिक उन्नति के लिये स्वेच्छा से किया जाना चाहिए। मानवसमाज तो लगातार बढ़ती जानेवाली चीज़ या आध्यात्मिक विकास है। यदि मानव समाज इस तरह उन्नतिशील है, तो उसका आधार शारीरिक वासनाओं पर दिन-ब-दिन ज्यादा अंकुश रखने पर निर्भर होना चाहिए। इस प्रकार से विवाह को तो एक ऐसी धर्मग्रंथि समझनी चाहिए जो कि पति और पत्नी दोनों पर अनुशासन करे और उन पर यह कैद लाज़िमी कर दे कि वे सदा अपने ही बीच में इन्द्रियभोग करेंगे, सो भी केवल संतति—जनन की गरज से और उसी हालत में जब कि वे दोनों उस काम के लिये तैयार और इच्छुक हों। तब तो उक्त पत्र की दोनों बातों में संतति-जनन की इच्छा को छोड़कर इन्द्रियभोग का और कोई प्रश्न उठता ही नहीं है।

जिस प्रकार उक्त लेखक सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी स्त्रीसंग को आवश्यक बतलाता है, उसी प्रकार अगर हम भी आरम्भ करें, तो तर्क के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता है। परन्तु संसार के हर एक हिस्से में चन्द उत्तम पुरुषों के सम्पूर्ण संयम के दृष्टान्तों की मौजूदगी में उक्त सिद्धान्त को कोई जगह नहीं है। यह कहना कि ऐसा संयम

अधिकांश मानव-समाज के लिए कठिन है, संयम की शक्यता और इष्टता के विरुद्ध कोई दलील नहीं हो सकती। सौ वर्ष हुए जो मनुष्य के लिए शक्य न था, वह आज शक्य पाया गया है। और असीम उन्नति करने के निमित्त काल के चक्र में, जो हमारे सामने पड़ा है, सौ वर्ष की बिसात ही क्या! अगर वैज्ञानिकों का अनुमान सत्य है तो कल ही तो हमें आदमी का चोला मिला है। उसकी मर्यादा को कौन जानता है? और किस में हिम्मत है कि कोई उसकी मर्यादा को स्थिर कर सके! निस्सन्देह हम नित्य ही भला या बुरा करने की निस्सीम शक्ति उसमें पाते हैं। अगर संयम की शक्यता और इष्टता मान ली जाय, तो हमको उसे करने योग्य साधनों को ढूंढ निकालने की कोशिश करनी चाहिए और जैसा कि मैं अपने किसी पिछले लेख में लिख चुका हूँ, अगर हम संयम से रहना चाहते हों तो हमें जीवनक्रम बदलना आवश्यक है। लड्डू हाथ में रहे और पेट में भी चला जाय—यह कैसे हो सकता है? जननेन्द्रिय-संयम अगर हम करना चाहते हैं तो हमको अन्य इन्द्रियों का संयम भी करना होगा। अगर हाथ-पैर, नाक, कान, आँख इत्यादि की लगाम ढीली कर दी जाय तो जननेन्द्रिय-संयम असम्भव है। अशान्ति, हिस्टीरिया, सिड़ीपन भी, जिसके लिए लोग ब्रह्मचर्य को दूषित ठहराते हैं, हकीकतन अन्त में अन्य इन्द्रियों के असंयम से पैदा हुए ही निकलेंगे। कोई भी पाप, और प्राकृतिक नियमों का कोई भी उल्लंघन, बिना दंड पाये बच नहीं सकता। मैं शब्दों पर झगड़ना नहीं चाहता। अगर आत्मसंयम प्रकृति का उल्लंघन ठीक इसी तरह है, जिस तरह कि गर्भाधान को रोकने के कृत्रिम उपाय हैं, तो भले ऐसा कहा जाय। लेकिन मेरा ख्याल तब भी यही बना रहेगा कि पहला

उल्लंघन कर्तव्य है और इष्ट है; क्योंकि उसमें व्यक्ति की तथा समाज की उन्नति होती है और इसके विपरीत दूसरे से उन दोनों का पतन। ब्रह्मचर्य, अतिशय संतति-संख्या नियमित करने के लिए, एक ही सच्चा रास्ता है। और स्त्री-प्रसंग के बाद संतति-वृद्धि रोकने के कृत्रिम साधनों का परिणाम जातिहत्या ही है।

अन्त में यदि खानों के मालिक गलत रास्ते पर होते हुए भी विजयी होंगे, तो इसलिए नहीं कि मजदूरों से उनकी संतति की संख्या बहुत बढ़ गई है, बल्कि इसलिये कि मजदूर लोगों ने सर्व इन्द्रियों के संयम का पाठ नहीं सीखा है। इन लोगों के बच्चे न पैदा होते तो उनको तरक्की के लिए उत्साह ही न होता। क्या उन्हें शराब पीने, जुआ खेलने, या तमाखू पीने की जरूरत है? और क्या यह कोई माकूल जवाब हो जायगा कि खदानों के मालिक इन्हीं दोषों से लिप्त रहते हुए भी उनके ऊपर हावी हैं? अगर मज़दूर लोग पूंजीपतियों से बेहतर होने का दावा नहीं करते तो उनको जगत की सहानुभूति मांगने का अधिकार ही क्या है। क्या इस लिये कि पूंजीपतियों की संख्या बढ़े और सम्पत्तिवाद का हाथ मजबूत हो? हमको प्रजावाद की दुहाई देने को यह आशा देकर कहा जाता है कि जब वह संसार में स्थापित होगा, तब हमको अच्छे दिन देखने को मिलेंगे। इसलिए हमें लाजिम है कि हम उन्हीं बुराइयों को स्वयं न करें जिनका दोषारोपण हम पूंजीपतियों और सम्पत्तिवाद पर करना पसन्द करते हैं। मुझे दुःख के साथ यह बात मालूम है कि आत्मसंयम आसानी से नहीं किया जा सकता। लेकिन उसकी धीमी गति से हमें घबराना न चाहिए। जल्दबाजी से कुछ हासिल नहीं होता। अधैर्य से जनसाधारण में या मजदूरों में अत्यधिक सन्तानोत्पत्ति की

बुराई बन्द न हो जायगी। मजदूरों के सेवकों के सामने बड़ा भारी काम पड़ा है। उनको संयम का वह पाठ अपने जीवनक्रम से निकाल न देना चाहिए जो कि मानव जाति के अच्छे से अच्छे शिक्षकों ने अपने अमूल्य अनुभव से हमको पढ़ाया है।

जिन मौलिक सिद्धांतों की विरासत उन्होंने हमें दी है, आधुनिक प्रयोगशालाओं से कहीं अधिक संपन्न प्रयोगशाला में उनका साक्षात्कार किया गया था। आत्म-संयम की शिक्षा उन सबों ने हमें दी है।

९—अप्राकृतिक व्यभिचार

कुछ साल पहले विहार-सरकार ने अपने शिक्षा-विभाग में पाठशालाओं में होनेवाले अप्राकृतिक व्यभिचार के सम्बन्ध में जाँच करवाई थी। जाँच-समिति ने इस बुराई को शिक्षकों तक में पाया था, जो अपनी अस्वाभाविक वासना की तृप्ति के कारण विद्यार्थियों के प्रति अपने पद का दुरुपयोग करते हैं। शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर ने एक सरक्यूलर-द्वारा शिक्षकों में पाई जानेवाली ऐसी बुराई के प्रतिकार करने का हुक्म निकाला था। सरक्यूलर का जो परिणाम हुआ होगा—अगर कोई हुआ हो—वह अवश्य ही जानने लायक होगा।

मेरे पास इस सम्बन्ध में भिन्न प्रान्तों से साहित्य भी आया है, जिसमें इस, और ऐसी ही अन्य बुराइयों की तरफ मेरा ध्यान खींचा गया है और कहा गया है कि यह प्रायः भारत भर के तमाम सार्वजनिक और प्राइवेट मदरसों में फैल गया है और बराबर बढ़ रहा है।

यह बुराई यद्यपि अस्वाभाविक है, तथापि इसकी विरासत हम अनन्तकाल से भोगते आ रहे हैं। तमाम छुपी बुराइयों का इलाज ढूंढ़ निकालना एक कठिन काम है। यह और भी कठिन बन जाता है, जब इसका असर बालकों के संरक्षक पर भी पड़ता है—और शिक्षक बालकों के संरक्षक हैं ही। प्रश्न होता है कि अगर प्राणदाता ही प्राणहारक हो जाय तो फिर प्राण कैसे बचें? मेरी राय में जो बुराइयाँ प्रकट हो चुकती हैं, उनके सम्बन्ध में विभाग की ओर से बाजाब्ता कार्रवाई करना ही इस बुराई के प्रतिकार के लिए काफ़ी न होगा।

सर्वसाधारण के मत को इस सम्बन्ध में सुसंगठित और संस्कृत बनाना इसका एक मात्र उपाय है। लेकिन इस देश के कई मामलों में प्रभाव-शाली लोकमत जैसी कोई बात है ही नहीं। राजनैतिक जीवन में असहाय अवस्था या बेबसी की जिस भावना का एकछत्र राज्य है, उसने देश के जीवन के सब क्षेत्रों पर अपना असर डाल रक्खा है। अतएव जो बुराइयां हमारी आँखों के समाने होती रहती हैं उन्हें भी हम टाल जाते हैं।

जो शिक्षा प्रणाली साहित्यिक योग्यता पर ही एकान्त जोर देती है, वह इस बुराई को रोकने के लिए अनुपयोगी ही नहीं है, बल्कि उससे उलटे बुराई को उत्तेजना ही मिलती है। जो बालक सार्वजनिक शालाओं में दाखिल होने से पहले निर्दोष थे, शाला के पाठ्यक्रम के समाप्त होते होते वे ही दूषित, स्त्रैण, और नामर्द बनते देखे गये हैं। विहार-समिति ने 'बालकों के मन पर धार्मिक प्रतिष्ठा के संस्कार जमाने' की सिफारिश की है। लेकिन बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे? अकेले शिक्षक ही धर्म के प्रति आदर-भावना पैदा कर सकते हैं। लेकिन वे स्वयं इससे शून्य हैं। अतएव प्रश्न शिक्षकों के योग्य चुनाव का प्रतीत होता है। मगर शिक्षकों के योग्य चुनाव का अर्थ होता है, या तो अब से कहीं अधिक वेतन या फिर शिक्षा के ध्येय का कायापलट—याने शिक्षा को पवित्र कर्तव्य मानकर शिक्षकों का उसके प्रति जीवन अर्पण कर देना। रोमन कैथोलिकों में यह प्रथा आज भी विद्यमान है। पहला उपाय तो हमारे जैसे गरीब देश के लिए स्पष्ट ही असम्भव है। मेरे विचार में हमारे लिए दूसरा मार्ग ही सुलभ है। लेकिन वह भी उस शासन-प्रणाली के अधीन रहकर सम्भव नहीं

जिसमें हर एक चीज़ की क़ीमत आंकी जाती है और जो दुनियाँ भर में ज्यादा से ज्यादा होती है।

अपने बालकों की नैतिक सुधारणा के प्रति माता-पिताओं की लापरवाही के कारण इस बुराई को रोकना और भी कठिन हो जाता है। वे तो बच्चों को स्कूल भेजकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। इस तरह हमारे सामने का काम बहुत ही विषादपूर्ण है। लेकिन यह सोचकर आशा भी होती है कि तमाम बुराइयों का एक रामबाण उपाय है, और वह है—आत्मशुद्धि। बुराई की प्रचंडता से घबरा जाने के बदले हममें से हर एक को पूरे पूरे प्रयत्नपूर्वक अपने आसपास के वातावरण का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना चाहिए और अपने आप को ऐसे निरीक्षण का प्रथम और मुख्य केन्द्र बनाना चाहिए। हमें यह सोचकर संतोष नहीं कर लेना चाहिए कि हममें दूसरों की सी बुराई नहीं है। अस्वाभाविक दुराचार कोई स्वतंत्र अस्तित्व की चीज़ नहीं है। वह तो एक ही रोग का भयंकर लक्षण है। अगर हम में अपवित्रता भरी है, अगर हम विषय की दृष्टि से पतित हैं, तो पहले हमें आत्मसुधार करना चाहिए और फिर पड़ोसियों के सुधार की आशा रखनी चाहिए। आज-कल तो हम दूसरों के दोषों के निरीक्षण में बहुत पटु हो गये हैं और अपने आप को अत्यंत निर्दोष समझते हैं। परिणाम दुराचार का प्रसार होता है। जो इस बात के सत्य को महसूस करते हैं, वे इससे छूटें और उन्हें पता चलेगा कि यद्यपि सुधार और उन्नति कभी आसान नहीं होते, तथापि वे बहुत कुछ सम्भवनीय हैं।

१०—ब्रह्मचर्य का रक्षक भगवान्

एक सज्जन पूछते हैं—"आपने एक बार काठियावाड़ की यात्रा में किसी जगह कहा था कि मैं जो तीन बहनों से बच गया सो केवल ईश्वर-नाम के भरोसे। इस सिलसिले में 'सौराष्ट्र' ने कुछ ऐसी बातें लिखी हैं जो समझ में नहीं आती। ऐसा कुछ लिखा है कि आप मानसिक पापवृत्ति से न बच पाये। इसका अधिक खुलासा करेंगे तो कृपा होगी।"

पत्र-लेखक से मेरा परिचय नहीं है। जब मैं बम्बई से रवाना हुआ तब उन्होंने यह पत्र अपने भाई के हाथ मुझे पहुँचाया। यह उनकी तीव्र जिज्ञासा का सूचक है। ऐसे प्रश्नों की चर्चा सर्व-साधारण के सामने आम तौर पर नहीं की जा सकती। यदि सर्व-साधारण जन मनुष्य के खानगी जीवन में गहरे पैठने का रिवाज डालें तो स्पष्ट बात है कि इसका फल बुरा आये बिना न रहे।

पर इस उचित या अनुचित जिज्ञासा से मैं नहीं बच सकता। मुझे बचने का अधिकार नहीं। इच्छा भी नहीं। मेरा खानगी जीवन सार्वजनिक हो गया है। दुनियां में मेरे लिये एक भी बात ऐसी नहीं है जिसे मैं खानगी रख सकूं। मेरे प्रयोग आध्यात्मिक हैं। कितने ही नये हैं। उन प्रयोगों का आधार आत्मनिरीक्षण पर बहुत है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' इस सूत्र के अनुसार मैंने प्रयोग किये हैं। इसमें ऐसी धारणा समाविष्ट है कि जो बात मेरे विषय में सम्भवनीय है वही

औरों के विषय में भी होगी। इसलिये मुझे कितने ही गुह्य प्रश्नों के भी उत्तर देने की ज़रूरत पड़ जाती है।

फिर पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए राम नाम की महिमा बताने का भी अवसर मुझे अनायास मिलता है। उसे मैं कैसे खो सकता हूँ?

तो अब सुनिये, किस तरह मैं तीनों प्रसंगों पर ईश्वरकृपा से बच गया। तीनों प्रसंग वार-वधुओं से सम्बन्ध रखते हैं। दो के पास भिन्न भिन्न अवसर पर मुझे मित्र लोग ले गये थे। पहले अवसर पर मैं झूठी शरम का मारा वहां जा फँसा और यदि ईश्वर ने न बचाया होता तो ज़रूर मेरा पतन हो जाता। इस मौके पर जिस घर में मैं ले जाया गया था, वहां उस स्त्री ने ही मेरा तिरस्कार किया। मैं यह बिल्कुल नहीं जानता कि ऐसे अवसरों पर किस तरह क्या बोलना चाहिये, किस तरह बरतना चाहिये। इसके पहले ऐसी स्त्रियों के पास तक बैठने में मैं लांछन मानता था। इससे इस घर में दाखिल होते समय भी मेरा हृदय कांप रहा था। मकान में जाने के बाद उसके चेहरे की तरफ भी मैं न देख सका। मुझे पता नहीं, उसका चेहरा था भी कैसा। ऐसे मूढ़ को वह चपला क्यों न निकाल बाहर करती? उसने मुझे दो-चार बातें सुनाकर रवाना कर दिया। उस समय तो मैंने यह न समझा कि ईश्वर ने बचाया। मैं तो खिन्न होकर दबे पाँव वहाँ से लौटा। मैं शरमिन्दा हुआ और अपनी मूढ़ता पर मुझे दुःख भी हुआ। मुझे आभास हुआ मानो मुझमें कुछ राम नहीं है। पीछे मैंने जाना कि मेरी मूढ़ता ही मेरी ढाल थी। ईश्वर ने मुझे बेवक़ूफ़ बनाकर

उबार लिया। नहीं तो मैं, जो कि बुरा काम करने के लिये गंदे घर में घुसा, कैसे बच सकता था ?

दूसरा प्रसंग इससे भी भयंकर था। यहां मेरी बुद्धि पहले अवसर की तरह निर्दोष न थी। हालांकि सावधान ज्यादा था। फिर मेरी पूजनीया माता जी को दिलाई प्रतिज्ञा-रूपी ढाल भी मेरे पास थी। पर इस अवसर पर प्रदेश था विलायत। मैं भरजवानी में था। दो मित्र एक घर में रहते थे। थोड़े ही दिन के लिये उस गांव में गये थे। मकान-मालकिन आधी वेश्या जैसी थी। उसके साथ हम दोनों ताश खेलने लगे। उन दिनों मैं समय मिल जाने पर ताश खेला करता था। विलायत में मां-बेटा भी निर्दोष भाव से ताश खेल सकते हैं, खेलते हैं। उस समय भी हमने ताश का खेल रिवाज के अनुसार अंगीकार किया। आरम्भ तो बिलकुल निर्दोष था। मुझे तो पता भी न था कि मकान-मालकिन अपना शरीर बेंचकर आजीविका प्राप्त करती है। पर ज्यों ज्यों खेल जमने लगा त्यों त्यों रंग भी बदलने लगा। उस बाई ने विषय-चेष्टा शुरू की। मैं अपने मित्र को देख रहा था। उन्होंने मर्यादा छोड़ दी थी। मैं ललचाया। मेरा चहरा तमतमाया। उसमें व्यभिचार का भाव भर गया था। मैं अधीर हो रहा था।

पर जिसे राम रखता है उसे कौन गिरा सकता है ? राम उस समय मेरे मुख में तो न था; पर वह मेरे हृदय का स्वामी था। मेरे मुख में तो विषयोत्तेजक भाषा थी। इन सज्जन मित्र ने मेरा रंग-ढंग देखा। हम एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे। उन्हें ऐसे कठिन प्रसंगों की स्मृति थी जब कि मैं अपने ही इरादे से पवित्र रह सका था। पर इस मित्र ने देखा कि इस समय मेरी बुद्धि बिगड़ गयी है। उन्होंने देखा कि

यदि इस रंगत में रात ज्यादा जायगी तो उनकी तरह मैं भी पतित हुए बिना न रहूँगा।

विषयी मनुष्यों में भी सुवासनाएं होती हैं। इस बात का परिचय मुझे इस मित्र के द्वारा पहले-पहल मिला। मेरी दीन दशा देखकर उन्हें दुःख हुआ। मैं उनसे उम्र में छोटा था। उनके द्वारा राम ने मेरी सहायता की। उन्होंने प्रेमबाण छोड़े—"मोनिया! (यह मोहनदास का दुलार का नाम है। मेरे माता, पिता, तथा हमारे कुटुम्ब के सबसे बड़े चचरे भाई, मुझे इसी नाम से पुकारते थे। इस नाम के पुकारने-वाले चौथे ये मित्र मेरे धर्मभाई साबित हुए) मोनिया, होशियार रहना! मै तो गिर चुका हूँ, तुम जानते ही हो। पर तुम्हें न गिरने दूंगा। अपनी मां के पास की प्रतिज्ञा याद करो। यह काम तुम्हारा नहीं। भागो यहां से, जाओ अपने बिछौने पर। हटो, ताश रख दो!"

मैंने कुछ जवाब दिया या नहीं, याद नहीं पड़ता। मैंने ताश रख दिये। जरा दुःख हुआ। लज्जित हुआ। छाती धड़कने लगी। उठ खड़ा हुआ। अपना बिस्तर सँभाला।

मैं जगा। राम नाम शुरू हुआ। मन में कहने लगा, कौन बचा, किसने बचाया, धन्य प्रतिज्ञा! धन्य माता! धन्य मित्र! धन्य राम! मेरे लिये तो यह चमत्कार ही था। यदि मेरे मित्र ने मुझ पर रामबाण न चलाये होते तो मैं आज कहां होता!

राम-बाण वाग्यां रे होय ते जाणे
प्रेम-बाण वाग्यां रे होय ते जाणे

मेरे लिये तो यह अवसर ईश्वर-साक्षात्कार था।

अब यदि मुझे संसार कहे कि ईश्वर नहीं, राम नहीं, तो मैं उसे झूठा कहूँगा। यदि उस भयंकर रात को मेरा पतन हो गया होता तो आज मैं सत्याग्रह की लड़ाइयां न लड़ा होता, तो मैं अस्पृश्यता के मैल को न धोता होता, मैं चरखे की पवित्र ध्वनि न उच्चार करता होता, तो आज मैं अपने को करोड़ों स्त्रियों के दर्शन करके पावन होने का अधिकारी न मानता होता, तो मेरे आसपास—जैसे किसी बालक के आसपास हों—लाखों स्त्रियां आज निःशंक होकर न बैठती होतीं। मैं उनसे दूर भागता होता और वे भी मुझसे दूर रहतीं और यह उचित भी था। अपनी जिन्दगी का सब से अधिक भयंकर समय मैं इस प्रसंग को मानता हूँ। स्वच्छन्दता का प्रयोग करते हुए मैंने संयम सीखा। राम को भूल जाते हुए मुझे राम के दर्शन हुए। अहो!

रघुबीर तुमको मेरी लाज
हौं तो पतित पुरातन कहिए
पार उतारो जहाज

तीसरा प्रसंग हास्यजनक है। एक यात्रा में जहाज के कप्तान के साथ मेरा मेल-जोल हो गया। एक अंग्रेज़ यात्री के साथ भी। जहां जहां जहाज़ बन्दर करता वहां कप्तान और कितने ही यात्री वेश्याघर तलाश करते। कप्तान ने अपने साथ मुझे बन्दर देखने चलने का न्यौता दिया। मैं उसका अर्थ नहीं समझता था। हम एक वेश्या के घर के सामने आकर खड़े हो गये। तब मैंने समझा कि बन्दर देखने जाने का अर्थ क्या है। तीन स्त्रियाँ हमारे सामने खड़ी की गयीं। मैं तो स्तम्भित हो गया। शर्म के मारे न कुछ बोल सका, न भाग सका। मुझे विषयेच्छा तो जरा भी न थी। वे दो

तो कमरे में दाखिल हो गये। तीसरी बाई मुझे अपने कमरे में ले गयी। मैं विचार ही कर रहा था कि क्या करूं—इतने में दोनों बाहर आये। मैं नहीं कह सकता, उस औरत ने मेरे सम्बन्ध में क्या ख्याल किया होगा। वह मेरे सामने हँस रही थी। मेरे दिल पर उसका कुछ असर न हुआ। हम दोनों की भाषा भिन्न थी। सो मेरे बोलने का काम तो वहाँ था ही नहीं। उन मित्रों ने मुझे पुकारा तो मैं बाहर निकल आया। कुछ शरमाया तो ज़रूर। उन्होंने अब मुझे ऐसी बातों में बेवकूफ़ समझ लिया। उन्होंने अपने आपस में मेरी दिल्लगी भी उड़ाई। मुझ पर रहम तो ज़रूर खाया। उस दिन से मैं कप्तान के नजदीक दुनियाँ के बुद्धुओं में शामिल हुआ। फिर उसने मुझे बन्दर देखने का न्यौता न दिया। यदि मैं अधिक समय वहाँ रहता, अथवा उस बाई की भाषा मैं जानता होता तो मैं नहीं कह सकता, मेरी क्या हालत होती। पर इतना तो मैं जान सका कि उस दिन भी मैं अपने पुरुषार्थ के बल न बचा था—बल्कि ईश्वर ने ही मुझे ऐसी बातों में मूढ़ रखकर बचाया।

इस भाषण के समय मुझे तीन ही प्रसंग याद आये थे। पाठक यह न समझें कि और प्रसंग मुझ पर न बीते थे;—मैं यह तो ज़रूर कहना चाहता हूँ कि हर अवसर पर मैं राम-नाम के बल पर बचा हूँ। ईश्वर खाली हाथ जानेवाले निर्बल को ही बल देता है।

जब लग गज बल अपनो बरत्यो

नेक सरयो नहिं काम

निर्बल होय बल राम पुकारयो

आये आधे नाम

तब यह रामनाम है क्या चीज़? क्या तोते की तरह रटना? हरगिज़ नहीं। यदि ऐसा हो तो हम सब का बेड़ा रामनाम रटकर पार हो जाय। रामनाम उच्चारण तो हृदय से ही होना चाहिये। फिर उसका उच्चारण शुद्ध न हो तो हर्ज नहीं। हृदय की तोतली बोली ईश्वर के दरबार में कबूल होती है। हृदय भले ही 'मरा मरा' पुकारता रहे—फिर भी हृदय से निकली पुकार जमा के सीगे में जमा होगी। पर यदि मुख रामनाम का शुद्ध उच्चारण करता होगा, और हृदय का स्वामी होगा रावण, तो वह शुद्ध उच्चार भी नाम के सीगे में दर्ज न होगा।

'मुख में राम बगल में छुरी वाले' बगला भगत के लिये राम-नाम-महिमा तुलसीदास ने नहीं गाई। उनके सीधे पासे भी उलटे पड़ेंगे। 'बिगरी' का सुधारनेवाला राम ही है और इसी से भक्त सूरदास ने गाया :—

बिगरी कौन सुधारे,
राम बिन बिगरी कौन सुधारे रे।
बनी बनी के सब कोई साथी।
बिगरी के नहिं कोई रे।

इस लिये पाठक खूब समझ लें कि राम नाम हृदय का बोल है। जहाँ वाचा और मन में एकता नहीं, वहाँ वाचा केवल मिथ्यात्व है दम्भ है, शब्दजाल है। ऐसे उच्चारण से चाहे संसार भले धोखा खा जाय; पर अन्तर्यामी राम कहाँ खा सकता है? सीता की दी हुई माला के मनके हनुमान ने फोड़ डाले; क्योंकि वे देखना चाहते थे कि अन्दर राम नाम है या नहीं? अपने को समझदार समझनेवाले सुभटों

ने उनसे पूछा—सीताजी की माला का ऐसा अनादार ?' हनुमान ने जवाब दिया, 'यदि उसके अन्दर राम-नाम न होगा तो वह सीता जी का दिया होने पर भी, यह हार मेरे लिये भार-भूत होगा। तब उन समझदार सुभटों ने मुँह बनाकर पूछा—'तो क्या तुम्हारे भीतर राम नाम है'? हनुमान ने छुरी से तुरन्त अपना हृदय चीरकर दिखाया और कहा—'देखो अन्दर राम नाम के सिवा और कुछ हो तो कहना।' सुभट लज्जित हुए। हनुमान पर पुष्पवृष्टि हुई। और उस दिन से रामकथा के समय हनुमान का आवाहन आरम्भ हुआ।

हो सकता है यह कथा काव्य या नाटककार की रचना हो; परन्तु उसका सार अनन्त काल के लिये सच्चा है। जो हृदय में है वही सच है।

११–ब्रह्मचर्य के प्रयोग

अब ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में विचार करने का समय आया है। एक-पत्नीव्रत ने तो विवाह के समय से ही मेरे हृदय में स्थान कर लिया था। पत्नी के प्रति मेरी वफ़ादारी मेरे सत्यव्रत का एक अंग था। परन्तु स्वपत्नी के साथ भी ब्रह्मचर्य का पालन करने की आवश्यकता मुझे दक्षिण अफ्रीका में ही स्पष्ट रूप से दिखाई दी। किस प्रसंग से अथवा किस पुस्तक के प्रभाव से यह विचार मेरे मन में पैदा हुआ, यह इस समय ठीक ठीक याद नहीं पड़ता। पर इतना स्मरण होता है कि इसमें रामचन्द्र भाई का प्रभाव प्रधान रूप से काम कर रहा था।

उनके साथ हुआ एक संवाद मुझे याद है। एक बार मैं मि० ग्लैडस्टन के प्रति मिसेज़ ग्लैडस्टन के प्रेम की स्तुति कर रहा था। मैंने पढ़ा था कि हाउस आफ़ कामन्स की बैठक में भी मिसेज़ ग्लेडस्टन अपने पति को चाय बनाकर पिलाती थीं। यह बात उस नियमनिष्ठ दम्पति के जीवन का एक नियम ही बन गया था। मैंने यह प्रसंग कवि जी को पढ़ सुनाया और उसके सिलसिले में दम्पति-प्रेम की स्तुति की। रामचन्द्र भाई बोले—'इसमें आपको कौनसी बात महत्व की मालूम होती है—मिसेज़ ग्लैडस्टन का पत्नीपन या सेवाभाव? यदि वे ग्लेडस्टन की बहन होतीं तो? अथवा उनकी वफ़ादार नौकर होतीं और फिर भी उसी प्रेम से चाय पिलातीं तो? ऐसी बहनों, ऐसी नौकरानियों के उदाहरण आज हमें न मिलेंगे? और नारी जाति के

बदले ऐसा प्रेम यदि नर-जाति में देखा होता तो आपको सानन्दाश्चर्य न होता ? इस बात पर विचार कीजियेगा।'

रामचन्द्र भाई स्वयं विवाहित थे। उस समय तो उनकी यह बात मुझे कठोर मालूम हुई—ऐसा स्मरण होता है; परन्तु इन वचनों ने मुझे लोह-चुम्बक की तरह जकड़ लिया। पुरुष नौकर की ऐसी स्वामि-भक्ति की क़ीमत पत्नी की स्वामिनिष्ठा की कीमत से हजारगुना बढ़कर है। पति-पत्नी में एकता या प्रेम का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। स्वामी और सेवक में ऐसा प्रेम पैदा करना पड़ता है। दिन-दिन कविजी के वचन का बल मेरी नज़रों में बढ़ने लगा।

अब मन में यह विचार उठने लगा कि मुझे अपनी पत्नी के साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिए। पत्नी को विषयभोग का वाहन बनाना पत्नी के प्रति वफादारी कैसे हो सकती है ? जब तक मैं विषय-वासना के अधीन रहूँगा तब तक वफ़ादारी की कीमत प्राकृत मानी जायगी। मुझे यहां यह बात कह देनी चाहिये कि हमारे पारस्परिक सम्बन्ध में कभी पत्नी की तरफ़ से मुझ पर ज़्यादती नहीं हुई। इस दृष्टि से मैं जिस दिन से चाहूँ, ब्रह्मचर्य का पालन मेरे लिये सुलभ था। मेरी अशक्ति अथवा आसक्ति ही मुझे रोक रही थी।

जागरूक होने के बाद भी दो बार तो मैं असफल ही रहा। प्रयत्न करता; पर गिरता। प्रयत्न में मुख्य हेतु उच्च न था। सिर्फ सन्तानोपत्ति को रोकना ही प्रधान लक्ष्य था। सन्ततिनिग्रह के बाह्य उपकरणों के विषय में बिलायत में मैंने थोड़ा-बहुत पढ़ लिया था। डा० पुलिन्सन के इन उपायों का उल्लेख मैं अन्यत्र कर चुका हूँ। उसका कुछ क्षणिक असर मुझ पर भी हुआ था। परन्तु मि० हिल्स

के द्वारा किये गये उनके विरोध तथा संयम के समर्थन का बहुत असर मेरे दिल पर हुआ और अनुभव के द्वारा वही चिरस्थायी हो गया। इस कारण प्रजोत्पत्ति की अनावश्यकता जँचते ही संयम-पालन के लिये उद्योग आरम्भ हुआ।

संयम-पालन में कठिनाइयां बेहद थीं। चारपाइयां दूर रखते। रात को थककर सोने की कोशिश करने लगा। इन सारे प्रयत्नों का विशेष परिणाम उसी समय तो न दिखाई दिया; पर जब मैं भूत-काल की ओर आंख उठाकर देखता हूँ तो जान पड़ता है कि इन्हीं सारे प्रयत्नों ने मुझे अन्तिम बल प्रदान किया।

अंतिम निश्चय तो ठेठ १९०६ ई० में ही कर सका। उस समय सत्याग्रह का श्रीगणेश नहीं हुआ था। उसका स्वप्न तक में मुझे ख्याल न था। बोअर युद्ध के बाद नेटाल में 'जुलू' बलवा हुआ। उस समय मैं जोहान्सबर्ग में वकालत करता था। पर मन ने कहा कि इस समय बलवे में मुझे अपनी सेवा नेटाल-सरकार को अर्पित करनी चाहिए। मैंने अर्पित की भी। वह स्वीकृत भी हुई। परन्तु इस सेवा के फलस्वरूप मेरे मन में तीव्र विचार उत्पन्न हुए। अपने स्वभाव के अनुसार अपने साथियों से मैंने उसकी चर्चा की। मुझे जँचा कि सन्तानोत्पत्ति और सन्तान-रक्षण लोकसेवा के विरोधक हैं। इस बलवे के काम में शरीक होने के लिये मुझे अपना जोहान्सबर्गवाला घर तितर-बितर करना पड़ा। टीपटाप के साथ सजाये घर को और जुटी हुई विविध सामग्री को अभी एक महीना भी न हुआ होगा, कि मैंने उसे छोड़ दिया। पत्नी और बच्चों को फ़ीनिक्स में रक्खा। और मैं घायलों की शुश्रूषा करनेवालों की टुकड़ी बनाकर

चल पड़ा। इन कठिनाइयों का सामना करते हुए मैंने देखा कि यदि मुझे लोक-सेवा में ही लीन हो जाना है तो फिर पुत्रैषणा एवं धनैषणा को भी नमस्कार कर लेना चाहिए और वानप्रस्थ-धर्म का पालन करना चाहिए।

बलवे में मुझे डेढ़ महीने से ज़्यादा न ठहरना पड़ा; परन्तु यह छः सप्ताह मेरे जीवन का अत्यन्त मूल्यवान समय था। व्रत का महत्व मैं इस समय सब से अधिक समझा। मैंने देखा कि व्रत बंधन नहीं, स्वतंत्रता का द्वार है। आज तक मेरे प्रयत्नों में आवश्यक सफलता नहीं मिलती थीं; क्योंकि मुझमें निश्चय का अभाव था। मुझे अपनी शक्ति का विश्वास न था। मुझे ईश्वर-कृपा का विश्वास न था। इस लिये मेरा मन अनेक तरंगों में और अनेक विकारों के अधीन रहता था। मैंने देखा कि व्रत-बन्धन से पृथक रहकर मनुष्य मोह में पड़ता है। व्रत से अपने को बाँधना मानों व्यभिचार से छूटकर एक पत्नी से सम्बन्ध रखना है। 'मेरा तो विश्वास प्रयत्न में है, व्रत के द्वारा मैं बँधना नहीं चाहता'—यह वचन निर्बलता-सूचक है और उसमें छुपे छुपे भोग की इच्छा रहती है। जो चीज़ त्याज्य है उसे सर्वथा छोड़ देने में कौन सी हानि हो सकती है? जो सांप मुझे डँसनेवाला है उसको मैं निश्चयपूर्वक हटा देता हूँ। केवल हटाने का प्रयत्न ही नहीं करता। क्योंकि मैं जानता हूँ कि केवल प्रयत्न का परिणाम होगा मृत्यु। प्रयत्न में सांप की विकरालता के स्पष्ट ज्ञान का अभाव है। इसी प्रकार जिस चीज़ के त्याग का हम प्रयत्नमात्र करते हैं उसके त्याग की आवश्यकता हमें स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दी है। यही सिद्ध होता है। 'मेरे विचार यदि बाद को बदल जांय तो?' ऐसी शंका से बहुत

धार हम व्रत लेते हुए डरते हैं। इस विचार में स्पष्ट दर्शन का अभाव है। इसी लिये निष्कुलानन्द ने कहा है—

त्याग न टिके रे वैराग बिना।

जहां किसी चीज़ से पूर्ण वैराग्य होगया है वहां उसके लिये व्रत लेना अपने आप अनिवार्य हो जाता है।

१२—ब्रह्मचर्य के प्रयोग

खूब चर्चा और दृढ़ विचार करने के बाद १९०३ में मैंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। व्रत लेने तक मैंने धर्मपत्नी से इस विषय में सलाह न ली थी। व्रत के समय अलबत्ते ली। उसने उसका कुछ भी विरोध न किया।

यह व्रत लेते हुए मुझे बड़ा कठिन मालूम हुआ। मेरी शक्ति कम थी। विकारों को क्यों कर दबा सकूंगा? स्वपत्नी के साथ भी विकारों से अलिप्त रहना अजीब बात मालूम होती थी। फिर भी मैं देख रहा था कि यह मेरा स्पष्ट कर्तव्य है। मेरी नीयत साफ़ थी। यह सोच-कर, कि ईश्वर शक्ति और सहायता देगा, मैं कूद पड़ा।

आज बीस साल बाद उस व्रत को स्मरण करते हुए मुझे सानन्द आश्चर्य होता है। संयम पालन करने का भाव तो १९०१ से ही प्रबल था, और उसका पालन कर भी रहा था; परन्तु जो स्वतंत्रता और आनन्द मैं अब पाने लगा, वह मुझे याद नहीं पड़ता कि १९०६ के पहले हो। क्योंकि उस समय मैं वासनाबद्ध था—हर समय उसके अधीन हो जाने का भय था। अब वासना मुझ पर सवारी करने में असमर्थ होगई।

फिर मैं ब्रह्मचर्य की महिमा और अधिकाधिक समझने लगा। व्रत मैंने फिनिक्स में लिया था। घायलों की शुश्रूषा से छुट्टी पाकर मैं फिनिक्स गया था। वहां से मुझे तुरन्त जोहान्सबर्ग जाना था।

मैं वहां गया और एक महीने के भीतर ही सत्याग्रह-संग्राम की नींव पड़ी। मानों यह ब्रह्मचर्य-व्रत मुझे उसके लिये तैयार करने ही आया हो! सत्याग्रह की कल्पना मैंने पहले ही नहीं कर रक्खी। उसकी उत्पत्ति तो अनायास—अनिच्छा से—हुई। पर मैंने देखा कि उसके पहले मैंने जो जो काम किये थे—जैसे फ़िनिक्स जाना, जोहान्सबर्ग का भारी खर्च कम कर डालना और अन्त को ब्रह्मचर्य-व्रत लेना—वे सब मानों इसकी पेशबन्दी थे।

ब्रह्मचर्य के सोलहों आने पालन का अर्थ है ब्रह्मदर्शन। यह ज्ञान शास्त्रों के द्वारा न हुआ था। यह अर्थ मेरे सामने धीरे धीरे अनुभव-सिद्ध होता गया। उससे सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र-वचन मैंने बाद को पढ़े। ब्रह्मचर्य में शरीर-रक्षण, बुद्धि-रक्षण और आत्मा का रक्षण, सब कुछ है। यह बात मैं व्रत के बाद दिनों दिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा। क्योंकि अब ब्रह्मचर्य को एक घोर तपश्चर्या रहने के बदले रसमय बनाना था, उसी के बल पर काम चलाना था, इस लिये उसकी खूबियों के नित नये दर्शन होने लगे।

पर मैं जो इस तरह उसके रस को घूंट पी रहा था, इससे कोई यह न समझें कि मैं उसकी कठिनता का अनुभव न कर रहा था। आज यद्यपि मेरे छप्पन साल पूरे हो गये हैं, फिर भी कठिनता का अनुभव तो होता ही है। यह अधिकाधिक समझता जाता हूं कि यह असिधारा-व्रत है। निरन्तर जागरूकता की आवश्यकता देखता हूं।

ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये स्वादेन्द्रिय को वश में करना चाहिए। मैंने खुद अनुभव करके देखा है कि यदि स्वाद को जीत लें, तो फिर ब्रह्मचर्य अत्यन्त सुगम हो जाता है। इस कारण इसके बाद मेरे

भोजन-प्रयोग केवल अन्नाहार की दृष्टि से नहीं, पर ब्रह्मचारी की दृष्टि से होने लगे। प्रयोग-द्वारा मैंने अनुभव किया कि भोजन कम, सादा, बिना मिर्च-मसाले का, और स्वाभाविक रूप में करना चाहिए। मैंने खुद छः साल तक प्रयोग करके देखा है कि ब्रह्मचारी का आहार बन-पके फल हैं। जिन दिनों मैं हरे या सूखे बन-पके फलों पर रहता था उन दिनों जिस निर्विकारपन का अनुभव होता था वह खूराक में परिवर्तन करने के बाद न हुआ। फलाहार के दिनों में ब्रह्मचर्य सहल था; दूधाहार के कारण कष्टसाध्य हो गया है। फलाहार छोड़कर दूधाहार क्यों ग्रहण करना पड़ा, इसका जिक्र यहां करने की आवश्यकता नहीं। यहां तो इतना कहना ही काफ़ी है कि ब्रह्मचारी के लिये दूध का आहार विघ्न-कारक है, इसमें लेश-मात्र सन्देह नहीं। इससे कोई यह अर्थ न निकाल ले कि हर ब्रह्मचारी के लिये दूध छोड़ना जरूरी है। आहार का असर ब्रह्मचर्य पर क्या और कितना पड़ता है, इस सम्बन्ध में अभी अनेक प्रयोगों की आवश्यकता है। दूध के सदृश शरीर के रगोरेशे को मज़बूत बनानेवाला और उतनी ही आसानी से हज़म होनेवाला फलाहार अब तक मुझे नहीं मिला है। न कोई वैद्य, हकीम, या डाक्टर ऐसे फल या अन्न बता सके हैं। इस कारण दूध को विकारोत्पादक जानते हुए भी अभी मैं उसके त्याग की सिफ़ारिश किसी से नहीं कर सकता।

बाहरी उपचारों में जिस प्रकार आहार के प्रकार की और परिमाण की मर्यादा आवश्यक है उसी प्रकार उपवास की बात समझनी चाहिए। इन्द्रियां ऐसी बलवान हैं कि चारों ओर से ऊपर नीचे दशों दिशाओं से जब उन पर घेरा डाला जाता है तभी वे क़ब्ज़े में

रहती हैं। सब लोग इस बात को जानते हैं कि आहार के बिना वे अपना काम नहीं कर सकतीं। इस लिये इस बात में मुझे ज़रा भी शक नहीं है कि इन्द्रिय-दमन के हेतु से इच्छापूर्वक किये उपवासों से इन्द्रिय-दमन में बड़ी सहायता मिलती है। कितने ही लोग उपवास करते हुए भी सफल नहीं होते। वे यह मान लेते हैं कि केवल उपवास से ही सब काम हो जायगा। वे बाहरी उपवास-मात्र करते हैं। पर मन में छप्पन भोगों का ध्यान लगाते रहते हैं। उपवास के दिनों में इन विचारों का स्वाद चक्खा करते हैं कि उपवास पूरा होने पर क्या क्या खाँयगे। और फिर शिकायत करते हैं कि न तो स्वादेन्द्रिय का संयम हो पाया और न जननेन्द्रिय का। उपवास से वास्तविक लाभ वहीं होता है जहां मन भी देह-दमन में साथ देता है। इसका यह अर्थ हुआ कि मन में विषय-भोग के प्रति वैराग्य हो जाना चाहिए। विषय का मूल तो मन में है। उपवासादि साधनों से मिलने-वाली सहायता बहुत होते हुए भी अपेक्षाकृत थोड़ी ही होती है। यह कहा जा सकता है कि उपवास करते हुए भी मनुष्य विषयासक्त रहता है। परन्तु उपवास के बिना विषयासक्ति का समूल विनाश संभवनीय नहीं। इस लिये उपवास ब्रह्मचर्य-पालन का अनिवार्य अङ्ग है।

ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले बहुतेरे विफल होते हैं; क्योंकि वे आहार-विहार तथा दृष्टि इत्यादि में अ-ब्रह्मचारी की तरह बर्ताव करते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं। यह कोशिश वैसी है जैसी कि गरमी के मौसम में सरदी के मौसम का अनुभव करने की कोशिश होती है। संयमी और स्वच्छंद के तथा भोगी और त्यागी के जीवन

में भेद अवश्य होना चाहिए। साम्य तो सिर्फ ऊपर ही रहता है। भेद स्पष्ट रूप से दिखाई देना चाहिए। आंख से दोनों काम लेते हैं। परन्तु ब्रह्मचारी देवदर्शन करता है, भोगी नाटक-सिनेमा में लीन रहता है। कान का उपयोग दोनों करते हैं। परन्तु एक ईश्वरीय भजन सुनता है और दूसरा विलासमय गीतों को सुनने में आनन्द मनाता है। जागरण दोनों करते हैं। परन्तु एक तो जागृत अवस्था में अपने हृदय-मन्दिर में विराजित राम की आराधना करता है, दूसरा नाच-रंग की धुन में सोने की याद भूल जाता है। भोजन दोनों करते हैं। परन्तु एक शरीर-रूपी तीर्थक्षेत्र की रक्षा-मात्र के लिये कोठे में अन्न डाल लेता है और दूसरा स्वाद के लिये देह में अनेक चीज़ों को भरकर उसे दुर्गन्धित बनाता है। इस प्रकार दोनें के आचार-विचार में भेद रहा ही करता है और यह अवसर दिन दिन बढ़ता है, घटता नहीं।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है मन, वचन, और काया से समस्त इन्द्रियों का संयम। इस संयम के लिये पूर्वोक्त त्यागों की आवश्यकता है—यह बात मुझे दिन दिन दिखाई देने लगी और आज भी दिखाई देती है। त्याग के क्षेत्र की सीमा ही नहीं, जैसी कि ब्रह्मचर्य की महिमा की भी सीमा नहीं है। ऐसा ब्रह्मचर्य अल्प प्रयत्न से साध्य नहीं होता। करोड़ों के लिए तो हमेशा एक आदर्श के रूप में ही रहेगा। क्योंकि प्रयत्न-शील ब्रह्मचारी तो नित्य अपनी त्रुटियों का दर्शन करेगा। अपने हृदय के कोने कोने में छिपे विकारों को पहचान लेगा और उन्हें निकाल बाहर करने का सतत उद्योग करेगा। जब तक अपने विचारों पर इतना कब्ज़ा न हो जाय कि अपनी इच्छा के बिना एक भी विचार न आने पावे, तब तक वह सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं। जितने भी विचार हैं, वे सब एक

तरह के विकार हैं। उनको वश में करने के मानी हैं मन को वश में करना और मन को वश में करना वायु को वश में करने से भी कठिन है। इतना होते हुए भी यदि आत्मा कोई चीज़ है तो फिर यह भी साध्य होकर रहेगा। रास्ते में बड़ी कठिनाइयां हैं। इससे यह न मान लेना चाहिए कि वह असाध्य है। वह तो परम-अर्थ है। और परम-अर्थ के लिये परम प्रयत्न की आवश्यकता हो तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है?

परन्तु देश आने पर मैंने देखा कि ऐसा ब्रह्मचर्य सहज प्रयत्नसाध्य नहीं है। कह सकते हैं कि तब तक मैं मूर्च्छा में था कि फलाहार से विकार समूल नष्ट हो जावेंगे और इसलिए अभिमान से मानता था कि अब मुझे कुछ करना बाक़ी नहीं रहा है।

अस्तु। यहां पर इतना कह देना आवश्यक है कि ईश्वर-साक्षात्कार करने के लिये मैंने ब्रह्मचर्य की व्याख्या की है। उसका पालन जो करना चाहते हैं, वे यदि अपने प्रयत्न के साथ ही ईश्वर पर श्रद्धा रखनेवाले होंगे तो उन्हें निराश होने का कोई कारण नहीं है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

गीता अ० २ श्लोक ५९

इस लिये आत्मार्थी का अन्तिम साधन तो रामनाम और रामकृपा ही है। इस बात का अनुभव मैंने हिन्दुस्तान आने पर ही किया।

१३—कुछ चुने हुए अनुभव और उपदेश

१—ब्रह्मचर्य-व्रत

'जुलू' में ब्रह्मचर्य-विषयक मेरे विचार परिपक्व हुए। अपने साथियों के साथ भी मैंने इसकी चर्चा की। हां, यह बात अभी मुझे स्पष्ट नहीं दिखाई देती थी कि ईश्वर-दर्शन के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। परन्तु यह मैं अच्छी तरह जान गया कि सेवा के लिए उसकी बहुत आवश्यकता है। मैं जानता था कि इस प्रकार की सेवाएं मुझे दिन-दिन अधिकाधिक करनी पड़ेंगी और मैं यदि भोग-विलास में, प्रजोत्पत्ति में और सन्तति-पालन में लगा रहा तो मैं पूरी तरह सेवा न कर सकूँगा। मैं दो घोड़े पर सवारी नहीं कर सकता। यदि पत्नी इस समय गर्भवती होती तो मैं निश्चिन्त होकर आज इस सेवा-कार्य में नहीं कूद सकता था। यदि ब्रह्मचर्य का पालन न किया जाय तो कुटुम्ब-वृद्धि मनुष्य के उस प्रयत्न की विरोधक हो जाय जो उसे समाज के अभ्युदय के लिए करना चाहिए; पर यदि विवाहित होकर ब्रह्मचर्य का पालन हो सके तो कुटुम्ब-सेवा समाज-सेवा की विरोधक नहीं हो सकती। मैं इन विचारों के भँवर में पड़ गया और ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेने के लिए कुछ अधीर हो उठा। उन विचारों से मुझे एक प्रकार का आनन्द और मेरा उत्साह बढ़ा। इस संकल्प ने सेवा का क्षेत्र बहुत विशाल कर दिया।

मैंने तो उसी समय व्रत ले लिया कि आज से जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। इस व्रत का महत्व और उसकी कठिनता मैं उस समय पूरी तरह न समझ सका था। कठिनाइयों का अनुभव तो मैं आज तक भी करता रहता हूँ। साथ ही उस व्रत का महत्व भी दिन-दिन अधिकाधिक समझता जाता हूँ। ब्रह्मचर्यहीन जीवन मुझे शुष्क और पशुवत मालूम होता है। पशु स्वभावतः निरंकुश है। परन्तु मनुष्यत्व इसी बात में है कि वह स्वेच्छा से अपने को अंकुश में रक्खे। ब्रह्मचर्य की जो स्तुति धर्मग्रन्थों में की गयी है उसमें पहले मुझे अत्युक्ति मालूम होती थी। परन्तु अब दिन-दिन यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है कि वह बहुत ही उचित और अनुभव-सिद्ध है।

वह ब्रह्मचर्य-जिसके ऐसे महान फल प्रकट होते हैं कोई हँसी-खेल नहीं है, केवल शारीरिक वस्तु नहीं है।

शारीरिक अंकुश से तो ब्रह्मचर्य का श्रीगणेश होता है। परन्तु शुद्ध ब्रह्मचर्य में तो विचार तक की मलिनता न होनी चाहिए। पूर्ण ब्रह्मचारी स्वप्न में भी बुरे विचार नहीं करता। जब तक बुरे सपने आया करते हैं, स्वप्न में भी विकार प्रबल होता रहता है तब तक यह मानना चाहिए कि अभी ब्रह्मचर्य बहुत अपूर्ण है।

मुझे तो कायिक ब्रह्मचर्य के पालन में भी महा कष्ट सहना पड़ा। इस समय तो यह कह सकता हूँ कि मैं अपने ब्रह्मचर्य के विषय में निर्भय हो गया हूँ; परन्तु अपने विचारों पर अभी पूर्ण विजय प्राप्त नहीं कर सका हूँ। मैं नहीं समझता कि मेरे प्रयत्न में कहीं कसर हो रही है; परन्तु मैं अब तक नहीं जान सका कि ऐसे-ऐसे विचार, जिन्हें

हम नहीं चाहते हैं, कहां से और किस तरह हम पर चढ़ाई कर देते हैं। हां, इस बात में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि विचारों को भी रोक लेने की कुंजी मनुष्य के पास है। पर अभी तो मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि वह चाबी प्रत्येक को अपने लिए खोजनी पड़ती है। महापुरुष जो अनुभव अपने पीछे छोड़ गये हैं वे हमारे लिए मार्ग-दर्शक हैं, उन्हें हम पूर्ण नहीं कह सकते। पूर्णता मेरी समझ में केवल प्रभु-प्रसादी है और इसलिए भक्त लोग, अपनी तपश्चर्या से पुनीत करके, राम-नामादि मंत्र हमारे लिए छोड़ गये हैं। मुझे विश्वास होता है कि अपने को पूर्णरूप से ईश्वरार्पण किये बिना विचारों पर पूरी विजय कभी नहीं मिल सकती। समस्त धर्म-पुस्तकों में मैंने ऐसे वचन पढ़े हैं और अपने ब्रह्मचर्य के सूक्ष्मतम पालन के प्रयत्न में मैं उनकी सत्यता का अनुभव भी कर रहा हूँ।

२—भोजन और उपवास

जिनके अन्दर विषय-वासना रहती है उनकी जीभ बहुत स्वाद-लोलुप रहती है। यही स्थिति मेरी भी थी। जननेन्द्रिय और स्वादेन्द्रिय पर कब्ज़ा करते हुए मुझे बहुत विडम्बनाएं सहनी पड़ी हैं और अब भी मैं यह दावा नहीं कर सकता कि इन दोनों पर मैंने पूरी विजय प्राप्त कर ली है। मैंने अपने को अतिभोजी माना है। मित्रों ने जिसे मेरा संयम माना है उसे मैंने कभी वैसा नहीं माना। जितना अंकुश मैं रख सका हूँ उतना यदि न रख सका होता तो मैं पशु से भी गया-बीता होकर अब तक कभी का नाश को प्राप्त हो गया होता। मैं अपनी त्रुटियों को ठीक-ठीक जानता हूँ और कह सकता हूँ कि

उन्हें दूर करने के लिये मैंने भारी प्रयत्न किये हैं। और इसी से मैं इतने साल तक इस शरीर को टिका सका हूँ और उससे कुछ काम ले सका हूँ।

इस बात का भान होने के कारण, और इस प्रकार की संगति अनायास मिल जाने के कारण, मैंने एकादशी के दिन फलाहार अथवा उपवास शुरू किये, जन्माष्टमी इत्यादि दूसरी तिथियों को भी उपवास करने लगा। परन्तु संयम की दृष्टि से फलाहार और अन्नाहार में मुझे बहुत भेद न दिखाई दिया। अनाज के नाम से हम जिन वस्तुओं को जानते हैं और उनमें जो स्वाद मिलता है वही फलाहार में भी मिलता है और आदत पड़ने के बाद तो मैंने देखा कि उनमें अधिक ही स्वाद मिलता है। इस कारण इन तिथियों के दिन सूखा उपवास अथवा एकासने को अधिक महत्व देता गया। फिर प्रायश्चित्त आदि का भी कोई निमित्त मिल जाता तो उस दिन भी एकासना कर डालता। इससे मैंने यह अनुभव किया कि शरीर के अधिक स्वच्छ हो जाने से स्वादों की वृद्धि हुई। भूख बढ़ी और मैंने देखा कि उपवासादि जहां एक ओर संयम के साधन हैं, वहीं दूसरी ओर वे भोग के साधन भी बन सकते हैं। यह ज्ञान हो जाने पर इसके समर्थन में उसी प्रकार के मेरे तथा दूसरों के कितने ही अनुभव हुए हैं। मुझे तो यद्यपि अपना शरीर अधिक अच्छा और दृढ़ सुडौल बनाना था, तथापि अब तो मुख्य हेतु था संयम को साधना और स्वादों को जीतना। इसलिये भोजन की चीज़ों में और उनकी मात्रा में परिवर्तन करने लगा; परन्तु स्वाद तो हाथ धोकर पीछे पड़े रहते। एक वस्तु को छोड़कर जब उसकी जगह दूसरी वस्तु लेता तो उसमें भी नये और अधिक

स्वाद उत्पन्न होने लगते। इन प्रयोगों में मेरे साथ और साथी भी थे। हरमान केलनबेक इनमें मुख्य थे। इनका परिचय दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास में दे चुका हूँ। इसलिए फिर यहां देने का इरादा छोड़ दिया है। उन्होंने मेरे प्रत्येक उपवास में, एकासने में, एवं दूसरे परिवर्तनों में, मेरा साथ दिया था। जब हमारे आन्दोलन का रंग खूब जमा था तब तो मैं उन्हीं के घर में रहता था। हम दोनों अपने इन परिवर्तनों के विषय में चर्चा करते और नये परिवर्तनों में पुराने स्वादों से भी अधिक स्वाद लेते। उस समय तो यह संवाद बड़े मीठे लगते थे। यह नहीं मालूम होता था कि उसमें कोई बात अनुचित होती थी। पर अनुभव ने सिखाया कि ऐसे स्वादों में गोते लगाना भी अनुचित था। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को स्वाद के लिये नहीं, बल्कि शरीर को कायम रखने के लिये ही भोजन करना चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय जब केवल शरीर के, और शरीर के द्वारा आत्मा के, दर्शन के ही लिये काम करती है तब उसके रस शून्यवत् हो जाते हैं। और तभी कह सकते हैं कि वह स्वाभाविक रूप में अपना काम करती है।

ऐसी स्वाभाविकता प्राप्त करने के लिए जितने प्रयोग किये जांय उतने ही कम हैं और ऐसा करते हुए यदि अनेक शरीरों की आहुति देनी पड़े तो भी हमें उसकी परवा न करनी चाहिए। अभी आजकल उलटी गंगा बह रही है। नाशवान शरीर को सुशोभित करने, उसकी आयु को बढ़ाने के लिए हम अनेक प्राणियों का बलिदान करते हैं। पर यह नहीं समझते कि उससे शरीर और आत्मा दोनों का हनन होता है। एक रोग को मिटाते हुए, इन्द्रियों के भोगों को

भोगने का उद्योग करते हुए, हम नये-नये रोग पैदा करते हैं और अन्त में भोग भोगने की शक्ति भी खो बैठते हैं। एवं सब से बढ़कर आश्चर्य की बात तो यह है कि इस क्रिया को अपनी आँखों सामने होते देखते हुए भी हम उसे देखना नहीं चाहते।

३—मन का संयम

जो लोग ब्रह्मचर्य पालन करने की इच्छा करते हैं उनके लिये यहाँ एक चेतावनी देने की आवश्यकता है। यद्यपि मैंने ब्रह्मचर्य के साथ भोजन और उपवास का निकट-सम्बन्ध बतलाया है, फिर भी यह निश्चित है कि उसका मुख्य आधार है हमारा मन। मलिन मन उपवास से शुद्ध नहीं होता। भोजन का उस पर असर नहीं होता। मन की मलिनता विचार से, ईश्वर के ध्यान से और अन्त में ईश्वर-प्रसाद से ही मिटती है। परन्तु मन का शरीर के साथ निकट सम्बन्ध है और विकारयुक्त मन अपने अनुकूल भोजन की तलाश में रहता है। सविकार मन अनेक प्रकार के स्वाद और भोगों को खोजता रहता है और फिर उस भोजन और भोगों का असर मन पर होता है। इस अंश तक भोजन पर अंकुश रखने की और निराहार की आवश्यकता अवश्य उत्पन्न होती है।

विकारयुक्त मन शरीर और इन्द्रियों पर अपना अधिकार करने के बदले शरीर और इन्द्रियों के अधीन चलता है। इस कारण भी शरीर के लिए शुद्ध—और कम से कम विकारोत्पादक—भोजन की मर्यादा की और प्रसंगोपात्त निराहार की, उपवास की, आवश्यकता रहती है।

इसलिये जो यह कहते हैं कि एक संयमी के लिये भोजन-सम्बन्धी मर्यादा की या उपवास की आवश्यकता नहीं, ये उतने ही भ्रम में पड़े हुए हैं जितना कि भोजन और निराहार को सब कुछ समझनेवाले पड़े हुए हैं। मेरा तो अनुभव यह सिखलाता है कि जिसका मन संयम की ओर जा रहा है उसके लिए भोजन की मर्यादा और निराहार बहुत सहायक होते हैं। उसकी मदद के बिना मन की निर्विकारता असम्भव मालूम होती है।

४—ब्रह्मचर्य के लिए कुछ आवश्यक उपदेश

जिन्होंने भोग-विलास को अपना धर्म नहीं मान लिया है और जो अपने खोये हुए आत्मसंयम को पुनः प्राप्त करने के लिये चेष्टा कर रहे हैं, उनके लिये निम्न-लिखित उपदेश हितकर सिद्ध होंगे।

१—यदि आप विवाहित हैं तो याद रखिये कि आप की स्त्री आपकी मित्र, सहचरी और सहयोगिनी है, भोग-विलास का साधन नहीं।

२—आत्म-संयम आप के जीवन का नियम है। इसलिये मैथुन तभी किया जा सकता है जब कि दोनों चाहें और वह भी उन नियमों से शासित होकर जिन्हें उन्होंने शान्तचित्त से तै कर लिया हो।

३—यदि आप अविवाहित हैं तो अपने को पवित्र रखना आपका अपने प्रति, समाज के प्रति, और अपने भावी साथी के प्रति, कर्तव्य है। यदि आप पत्नीभक्ति की इस भावना को दृढ़ करेंगे, तो इसे आप सारे प्रलोभनों से बचने का अमोघ साधन पावेंगे।

४—सदा उस अदृश्य शक्ति का विचार करो जिसे चाहे हम कभी भी न देख सकें तब भी हम अपने अन्दर रखवाली करते और प्रत्येक अपवित्र विचार को टोंकने अनुभव करते हैं। फिर आप देखेंगे कि वह शक्ति सदा आपकी सहायता कर रही है।

५—आत्म-संयम के जीवन के नियम भोग-विलास के जीवन से अवश्य भिन्न होने चाहिए। इसलिये आपको अपना संग, अध्ययन, मनोरञ्जन के स्थान और भोजन सभी संयमित करना चाहिये।

आप भले और पवित्र आदमियों का संग-साथ ढूंढें। कामुकता-पूर्ण उपन्यास और पत्रिकाएं आपको दृढ़तापूर्वक छोड़ देनी चाहिए और उन रचनाओं को पढ़ना चाहिये जो संसार के लिये जीवन-प्राण हैं। समय पर काम देने और पथ-प्रदर्शन के लिए आपको एक पुस्तक सदैव के लिए सहचरी बना लेनी चाहिए।

आपको थियेटर और सिनेमा त्याग देना चाहिए। दिल-बहलाव वह है जिससे हृदय को शान्ति मिले, वह आपे से बे-आपे न हो जावे। इस लिए आपको उन भजन-मंडलियों में जाना चाहिए जहां शब्द और संगीत दोनों ही आत्मा की उन्नति करते हैं।

आप अपनी भूख बुझाने के लिये भोजन करेंगे, जीभ के स्वाद के लिए नहीं। भोगी पुरुष खाने के लिये जीता है, संयमी पुरुष जीने के लिए खाता है। आप भड़कानेवाले मसालों, स्नायुओं को उत्तेजना देनेवाली शराब और सत्य और असत्य की भावना को मार डालने-वाली नशीली चीज़ों का परित्याग कर दें। आपको अपने भोजन के समय और परिमाण नियमित कर लेने चाहिए।

६—जब आपको विषय-वासनाएं आपको धर दबोचने की धमकी दें तो आप अपने घुटनों के बल बैठ जावें और परमात्मा से सहायता के लिये पुकार लगायें। रामनाम हमारा अमोघ सहायक है। बाह्य सहायता के लिये हिप-बाथ लेना चाहिए अर्थात् ठंडे पानी से भरे हुए टब में अपनी टांगें बाहर निकालकर लेटना चाहिए। ऐसा करने से आपकी विषय-वासनाएं शीघ्र ही शान्त होती दिखाई देंगी। यदि आप कमज़ोर न हों और सर्दी लग जाने का भय न हो तो उसमें कुछ मिनट तक बैठे रहें।

७—प्रातःकाल और शयन से पहले रात्रि के समय खुली हवा में तेज़ी से टहलने की कसरत कीजिये।

८—'शीघ्र सोना और शीघ्र जागना, मनुष्य को आरोग्य, धनवान् और बुद्धिमान् बनाता है'—यह प्रमाणित कहावत है। ९ बजे सोना और ४ बजे उठना अच्छा नियम है। खाली पेट सोना चाहिए। इसलिए आपका अन्तिम भोजन छै बजे शाम के बाद में न होना चाहिए।

९—याद रखिये कि प्राणिमात्र की सेवा करने—और इस प्रकार ईश्वर की महत्ता और प्रेम प्रदर्शित करने के लिये मनुष्य परमात्मा का प्रतिनिधि है। सेवा-कार्य आपका एक मात्र सुख हो। फिर आपको जीवन में अन्य सुखों की आवश्यकता न रह जायगी।

Printed by Bankey Lal Sharma at the
Allahabad Printing Works, Allahabad.

तरुणभारत-ग्रन्थावली

[सम्पादक—पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी]

स्थायीग्राहक बनने के नियम

१—इतिहास, जीवनचरित्र, सदाचार और नीति, विज्ञान, कविता, आख्यायिका, सुरुचिपूर्ण नाटक, उपन्यास, इत्यादि विषयों के उत्तमोत्तम ग्रन्थ सुलभ मूल्य पर प्रकाशित करना इस ग्रन्थावली का मुख्य उद्देश्य है।

२—आठ आना प्रवेश-फीस भेजकर सब लोग इसके स्थायी ग्राहक बन सकते हैं।

३—स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थावली के सब अगले और पिछले ग्रन्थ पौनी कीमत पर, यानी एक-चौथाई कमीशन काटकर, दिये जाते हैं। वे ग्रन्थावली के प्रत्येक ग्रन्थ को चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जितनी बार, पौने मूल्य पर ही प्राप्त कर सकते हैं।

४—कोई भी नवीन ग्रन्थ निकलने पर दस बारह दिन पहले उसका वी० पी० भेजने की सूचना स्थायी ग्राहकों को दे दी जाती है। ग्राहकों को वी० पी० वापस नहीं करना चाहिए; क्योंकि इससे कार्यालय को व्यर्थ की हानि उठानी पड़ती है।

५—जिन ग्राहकों का वी० पी० तीन बार लगातार वापस आता है, उनका नाम स्थायी ग्राहकों से अलग कर दिया जाता है।

६—प्रत्येक मातृ-भाषा-हितैषी का परम पवित्र कर्त्तव्य है कि इस ग्रन्थावली के स्थायी ग्राहक बनकर हमारे इस शुभ-कार्य में सहायता करें। क्योंकि हमारा उद्देश्य केवल पुस्तकों का व्यापार ही नहीं है; बल्कि हिन्दी-साहित्य में सुरुचिपूर्ण ग्रन्थों का विस्तार करना हमारा मुख्य लक्ष्य है। हिन्दी-साहित्य की आवश्यकता को ही देखकर हम ग्रन्थों का चुनाव करते हैं।

—व्यवस्थापक

तरुणभारत-ग्रन्थावली-कार्यालय, दारागंज, प्रयाग

हमारी ग्रन्थावली की कुछ पुस्तकें

१-उषःपान

उषःकाल यानी तड़के उठकर नासिका अथवा मुख के द्वारा जलपान करने का विधान वैधक और योगशास्त्र में मिलता है। इस क्रिया के द्वारा वृद्ध मनुष्य भी युवा बन जाता है। इसकी विस्तृत विधि और इसके लाभ इस पुस्तक में विस्तारपूर्वक बतलाये गये हैं। जल-प्रयोग के द्वारा स्वास्थ्य साधन करनेवाले सज्जनों को एक बार यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य सिर्फ पांच आने।

२-इच्छाशक्ति के चमत्कार

मनुष्य यदि प्रबल संकल्पशक्ति धारण करे, तो संसार में कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो उसके लिए असम्भव हो। हम अपनी इच्छाशक्ति को किस प्रकार बढ़ा सकते हैं; और उससे शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं; यह यदि आप जानना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को पढ़ें। मूल्य सिर्फ पांच आने।

३-भोजन और स्वास्थ्य पर महात्मा गान्धी के प्रयोग

महात्माजी ने अपने जीवन के बहुत बड़े भाग को इन प्रयोगों में लगाया है, और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने में भोजन का कहां तक प्रभाव है, और स्वास्थ्य के लिए किन किन बातों की मनुष्य को अनिवार्य आवश्यकता है, इत्यादि विषयों पर इस पुस्तक में बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है। आपको अपना जीवन उत्तम ढांचे पर ढालने के लिए लाज़िमी है कि आप इस पुस्तक को बार बार ध्यानपूर्वक पढ़ें। मूल्य सिर्फ बारह आने।

४-धर्मशिक्षा

पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी की लिखी हुई धर्मशिक्षा हिन्दी-संसार में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी हज़ारों कापियां निकल चुकी हैं। श्रुति, स्मृति, पुराण, उपनिषद्, महाभारत, गीता, दर्शन इत्यादि बड़े बड़े धर्म-ग्रन्थों का खूब अध्ययन कर के यह धर्मशिक्षा लिखी गई है। यह हिन्दू धर्म की कुन्जी है। प्रत्येक घर में इसकी एक कापी अवश्य रहनी चाहिये। पौने तीन सौ पृष्ठ की बड़ी पोथी का दाम सिर्फ एक रुपया रखा गया है।

५-गार्हस्थ्यशास्त्र

डोमेस्टिक साइंस (Domestic science) पर हिन्दी में यह एक ही पुस्तक है। लगभग चालीस अध्यायों में घर-गृहस्थी के प्रबन्ध पर इसमें पूरा पूरा प्रकाश डाला गया है। इसके भी तीन एडीशन निकल चुके हैं। बहू-बेटियों को उपहार में देने योग्य है। लगभग पौने तीन सौ पृष्ठ; और मूल्य वही एक रुपया। आप भी अपने घर में इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य रखें। कन्या-पाठशालाओं में पारितोषिक देने के लिए भी यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

६-अपना सुधार

अँगरेजी में ब्लेक्रीज़ सेल्फकल्चर बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है। इसमें शारीरिक, मानसिक और आचरण-सम्बन्धी सुधार के अनुभवजन्य साधन बतलाये गये हैं। एक बार ही पुस्तक पढ़ जाने से मनुष्य के आचरण पर बिजली का सा प्रभाव पड़ता है। नवयुवक और नवयुवतियों के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी है। मूल्य सिर्फ दस आने।

७-सदाचार और नीति

आत्मनिरीक्षण, आत्मसंयमन, श्रद्धा, समाजनियम, ईश्वरभक्ति, परोपकार, इत्यादि धार्मिक और नैतिक विषयों पर सुन्दर विवेचन किया गया है। मनोरंजक दृष्टान्तों के द्वारा विषय को बहुत ही सरलता से समझाया है। मूल्य दस आने।

८—हमारा स्वर मधुर कैसे हो ?

स्वर-विज्ञान पर हिन्दीभाषा में यह एक ही पुस्तक है। यदि आप अपने स्वर को अत्यन्त कोमल और मधुर, कोयल की तरह, बनाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक में बतलाई हुई तरकीबों पर अवश्य अमल करें। मूल्य सिर्फ ।–) आने।

९—स्वास्थ्य और प्राणायाम (सचित्र)

अर्थात् श्वास-प्रश्वास के द्वारा शरीर में प्राण संचार करने के साधन। यदि आप बिना औषधि के ही पूर्ण आरोग्य के साथ सौ वर्ष तक जीवित रहने की अभिलाषा रखते हैं; तो इस पुस्तक को मगाकर इसमें बतलाई हुई कसरतों का अभ्यास कीजिए। पुस्तक सचित्र है। मूल्य लागत मात्र सिर्फ १।|) रु० रखा गया है।

१०—हमारे बच्चे स्वस्थ और दीर्घजीवी कैसे हों ?

हमारे बच्चे कमज़ोर क्यों पैदा होते हैं, माता-पिता किन नियमों का पालन करें कि जिससे मज़बूत सन्तान पैदा हो; और पैदा होने के बाद बच्चों का पालन-पोषण कैसे किया जाय, कि वे अकाल में ही काल के गाल में न चले जायँ; और सुन्दर स्वस्थ जीवन के साथ दीर्घायु प्राप्त करें, इत्यादि बातें इसमें बड़ी योग्यता से बतलाई गई हैं। लेखक आयुर्वेद-विशारद पं० महेन्द्रनाथ पांडेय हैं। मूल्य सिर्फ ||) आने।

पुस्तकें मिलने का पताः—

व्यवस्थापक, तरुण-भारत-ग्रन्थावली,

दारागंज, इलाहाबाद

निम्नलिखित पुस्तकें अवश्य मँगाकर पढ़िये ।

स्वास्थ्य की पुस्तकें

१—उषःपान	...	...	।-)
२—भोजन और स्वास्थ्य पर महात्मा गान्धी के प्रयोग			॥)
३—ब्रह्मचर्य पर महात्मा गान्धी के अनुभव		...	।)
४—हमारा स्वर मधुर कैसे हो ?	...	...	।-)
५—इच्छाशक्ति के चमत्कार	...	...	।-)
६—स्वास्थ्य और प्राणायाम (सचित्र)		...	१॥)
७—हमारे बच्चे स्वस्थ और दीर्घजीवी कैसे हों ?		...	॥)
८—आहारशास्त्र	...	...	१)

उपन्यास

१—हृदय का कांटा	...	...	१॥)
२—बिखरा फूल	...	...	१॥)
३—जीवन का मूल्य	...	...	१॥)
४—फूलवाली	...	...	१॥)
५—जीवन के चित्र	...	...	१)
६—चिपटी खोपड़ी	...	...	१)